संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सह संपादन:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

सहयोग:
जया विवेक
बृजेश सिंह
रामभरोस यादव
महेश बसेड़िया
आयशा पठान

परामर्श (शिक्षक)
स्वाति चौबे
मनोज शुक्ला
कृष्णा तलरेजा
अरविंद मेहरा
एस. सी. राजवैद्य
प्रवीण वर्मा
श्यामल दास गुप्ता

शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-18, सितम्बर-अक्टूबर, 1997

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574–53518

वार्षिक सदस्यता (6अंक) : 35 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ एवं पिछला पृष्ठ: गौर किया होगा आपने कि कई बार बादलों में ऐसे भी रंग दिख जाते हैं जो आमतौर पर नहीं दिखा करते। ऐसे ही क्षणों में खींचे गए फोटो। बादलों के बारे में और अधिक जानकारी पृष्ठ 15 पर।

इस अंक में विभिन्न किताबों से लिए गए चित्र: *बायोलॉजिकल साइंसेज़* लेखक: विलियम टी. कीटन, जेम्स एल. गूल्ड, प्रकाशक: डब्लू. डब्लू. नॉर्टन एंड कंपनी; *द बॉडी* प्रकाशक: टाइम लाइफ बुक्स इन्क.; *प्लान्ट एनोटॉमी* लेखक: ए. फाह्न प्रकाशक: पर्गेमन प्रेस, ऑक्सफोर्ड; *बायोकेमेस्ट्री एंड फिजियोलॉजी ऑफ द सेल* लेखक: एन. ए. एडवर्ड, के. ए. हैसल प्रकाशक: मेकग्रॉ हिल बुक कंपनी (यू. के.) लिमिटेड, लंदन; *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन नेचुरल हिस्ट्री* प्रकाशक: बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी; *कलर एंड लाइट इन नेचर* लेखक: डेविड के. लिन्च एंड विलियम लिविन्गस्टन प्रकाशक: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस; *कन्टेम्पोररी क्लाइमेटॉलोजी* लेखक: एन हेन्डरसन सैलर्स, पीटर जे. रोबिनसन प्रकाशक: इंग्लिश लैंग्वेज बुक सोसायटी।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है

सवालीराम. 15

क्यूं टंगा है बादल ऊपर? अरे, जब गुरुत्वाकर्षण सबको नीचे खींचता है तो यह ऊपर कैसे? वाजिब सवाल है? लेकिन यह गुरुत्वाकर्षण ही तो है कि बारिश होती है। बातें और भी हैं इस सवाल में कि बादल कैसे बनते हैं, बूंदों के आकार का सवाल से क्या वास्ता है आदि। हां, सवाल का एक पहलू यह भी है कि सुबह और शाम के समय कुछ बादल रंगीन क्यों होते हैं?

बिजली के झटके. 37

"बिजली के झटकों से सावधान करने के लिए ट्रांसफॉर्मर, जनरेटरों व बिजली के खंभों आदि पर अक्सर सिर्फ वोल्ट का ही ज़िक्र होता है, जैसे 'सावधान! 440 वोल्ट , खतरा! 1100 वोल्ट' आदि। यह पूर्णत: सच नहीं है। आपको बिजली का झटका खिलाने में विद्युत वोल्ट का हाथ ज़रूर होता है लेकिन एक ज़रूरी शर्त बतौर।"

तो और क्या बातें हैं इस मुद्दे में। एक विश्लेषणात्मक लेख।

एटीपी और मांसपेशियों का सिकुड़ना. 62

ऊर्जा का वाहक अणु – एटीपी। सूक्ष्मतम बैक्टीरिया से लेकर विशालकाय व्हेल और एककोशीय शैवाल से लेकर पिंड खजूर सभी में एटीपी पाया जाता है और ऊर्जा विनिमय की भूमिका निभाता है। मांसपेशीय संकुचन के ज़रिए रासायनिक ऊर्जा के यांत्रिक ऊर्जा में परिवर्तित होने की प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा।

पावरझंडा, 57 सालों में. 22

एक स्कूल और गांव के लिए 57 साल का समय काफी बड़ा होता है। अगर इन सालों के आंकड़ों को इकट्ठा कर समग्र रूप से देखा जाए तो कई तरह की तस्वीरें उभरती हैं। जो एक तो भूतकाल का लेखा-जोखा करने के काम आ सकती हैं और साथ ही भविष्य की योजनाएं बनाने में भी। ऐसे ही एक स्कूल की कहानी आंकड़ों की ज़ुबानी।

इस अंक में

आपने लिखा.	2	पर्यावरण क्या और क्या नहीं.	47
पेड़-पौधों में श्वसन, जड़.	7	ढाई चक्कर की गुत्थी.	59
सवालीराम.	15	एटीपी और मांसपेशियों का.	62
पावरझंडा, 57 सालों में.	22	साकार होती कल्पनाएं.	73
पलकों का नज़ारा और चूहे.	29	वह आदमी जो चमत्कार कर.	79
बिजली के झटके.	37	इंडेक्स अंक 13-18.	89

पिछले एक वर्ष से मैं 'संदर्भ' की पाठक हूं। कई रोचक लेखों को पढ़ा व सराहा है। यह महसूस भी किया कि विज्ञान में मेरी रुचि बढ़ गई है। लेखों की भाषा स्पष्ट है तथा विषय को बहुत अच्छी तरह समझाया गया है।

मेरे पिताजी, जो आई. आई. टी. में प्रोफेसर हैं, उन्हें भी 'संदर्भ' में छपे विज्ञान के लेख काफी प्रभावशाली लगे।

शिक्षकों द्वारा अपने अनुभवों के बारे में बताना भी एक नया विचार लगा। इस तरह हम यह जान सकते हैं कि कक्षा में असल में क्या होता है। बच्चों की शिक्षक से क्या अपेक्षाएं हैं और वे क्या महसूस करते हैं, यह जानकारी किसी भी शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण है।

जानना चाहती हूं कि क्या 'सन्दर्भ' में 3-6 साल के बच्चों के विकास से संबंधित लेख भी छपते हैं? आज कल Early Childhood Care and Education पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है। स्कूल में प्रवेश से पहले बच्चे को किस प्रकार के अनुभवों की आवश्यकता है और इन अनुभवों का बच्चे के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह आजकल चर्चा का विषय बन गया है। इन विषयों पर लेख सराहे जाएंगे।

आशा है कि आगे भी अनेक रोचक लेख पढ़ने को मिलेंगे।

रश्मि मल्होत्रा
आई. आई. टी. कैम्पस, नई दिल्ली

शैक्षिक संदर्भ जुलाई-अगस्त 1997 में प्रकाशित प्रोफेसर यशपाल का व्याख्यान (संपादित अंश) पढ़ने का सौभाग्य हुआ। इच्छा है कि पूरा व्याख्यान पढ़ा जाए और अधिक-से-अधिक अभिभावकों व अध्यापकों को भी इसे पढ़ने व समझने का मौका दिया जाए। आशा है आप पूरा व्याख्यान दिलवाने में हमारी मदद करेंगे। संदर्भ हमारे तीनों स्कूलों में पसंद की जा रही है।

दिनेश रस्तोगी
फैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश

हम आपके आभारी हैं कि हमने जो मेंढक के जीवनचक्र वाला लेख भेजा था वह आपने छाप दिया। हमें बेहद खुशी हुई और हम शीघ्र ही वृद्धि वाले अध्याय का लेख लिखकर भेज रहे हैं।

हमने यह सोचा भी नहीं था कि आप हमारा मेंढक वाला लेख छाप देंगे। इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

मीनाक्षी बरड़े, नीता वानखेड़े, अमिता अखण्डे, अमिता गांवड़े व कन्या मा. शाला, भौरां की कक्षा-8 की समस्त छात्राएं।

नववष के उपहार स्वरूप 'संदर्भ' का 18वां अंक मिला, धन्यवाद। लगातार दो-तीन वर्षों से आप मुझे 'चकमक' भेज रहे हैं। पता

नहीं कौन-सा अंजाना रिश्ता हमारे-आपके बीच में जुड़ गया है, जिससे इतना प्यार व अपनापन मुझे मिल रहा है। बस आशा है कि यही प्यार बना रहे।

इसके पहले भी 'संदर्भ' के तीन-चार अंक मिल चुके हैं। चकमक जहां बच्चों का मनोरंजन कर ज्ञान बढ़ाती है वहीं संदर्भ किशोरों की पसंद होनी चाहिए क्योंकि इसमें विज्ञान संबंधी नई जानकारी देकर आप सहज ढंग से कुछ नया सीखने का उत्साह जगाते हैं।

18वें अंक में सबसे अच्छा लेख 'स्कूल के सवाल ज़िंदगी के सवालों से फर्क क्यों' लगा; प्रोफेसर यशपाल जी का ढंग मन को भाया। उनकी बातें शतप्रतिशत सच हैं। जीवन में ऐसी अनेक बातें घटती हैं, जिन्हें हम सबके सामने रखना नहीं चाहते जबकि उसमें वैज्ञानिक तत्व से खोज करने पर बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इस तरह से खोजी प्रवृति का जन्म होता है।

'नींद, सुलझी अनसुलझी पहेली' के अंतर्गत भी रोचक जानकारी दी गई है, जिससे सहज आने वाली निद्रा देवी से अच्छा परिचय हुआ। 'आपने लिखा' कॉलम पढ़कर इसकी लोकप्रियता का एहसास होता है; साथ ही इस पर भी ध्यान गया कि उसके सभी लेखक मध्य प्रदेश के हैं। इससे सवाल उठता है कि क्या इसका प्रसार सिर्फ मध्य प्रदेश तक ही सीमित है, जबकि ऐसी पत्रिका को तो हमारे विचार से सभी हिन्दी स्कूलों में पढ़ना अनिवार्य होना चाहिए। कुछ नहीं तो विज्ञान के शिक्षकों तक तो ज़रूर पहुंचे, जिससे उन्हें हंसते-खेलते पढ़ाने का आइडिया मिले व बच्चे भी खूब अच्छी तरह से विज्ञान को समझकर इससे डरने की बजाए प्यार करने लगें। संदर्भ के प्रचार की काफी ज़रूरत है।

'कक्षा में गतिविधियां' स्तंभ के अंतर्गत मेंढक के बारे में प्रयोगात्मक विषय देकर बच्चों के लिए आपने एक नया तोहफा ही दिया है।

'फुटबॉल कार्बन' लेख ज़्यादा समझ में नहीं आया। शायद सातवीं कक्षा तक पढ़ा हूं इसलिए – वैसे वो भी एक रोचक जानकारी थी।

'रोशनी और मुर्गी का अंडा' भी काफी रोचक व मुर्गीपालने वालों के लिए फायदेमंद साबित होगा। ये जानकारी पढ़कर ऐसा लगा कि जिस तरह गाय भैंस दूध देती हैं, उसी तरह मुर्गी अंडा देती है, क्योंकि मुर्गी के अंडा देने में मुर्गे से मेल होने की कोई ज़रूरत नहीं होती। शायद इसी तरह अन्य पक्षी बत्तख-कबूतर आदि भी अण्डा देते हैं कि नहीं कृपया बताएं?

'रोज़गार' के तहत भी अर्थशास्त्र व समाज संबंधी एक खोजपूर्ण जानकारी आपने दी है। समाज के गरीब वर्ग के लिए जब तक संपन्न आदमी नहीं सोचेगा तब तक सरकारी

नीतियों से पूर्णतः सुधार नहीं हो सकता। गरीबों का दोहन तो समाज के संपन्न व्यक्ति ही करते हैं।

'क्यों पढ़ाते थे वैसे' भी काफी मज़ेदार लगा। वैसे तो सभी के जीवन में स्कूल में ऐसी घटना होती रहती है, परंतु लिखकर बताना व उसे पढ़ने में एक अलग मज़ा आता है; व सबको कुछ-न-कुछ सीखने को भी मिलता है।

कहानी 'चमत्कार' वाकई अच्छी लगी। अगली कड़ी पढ़ने की उत्सुकता बरकरार है। 'एकलव्य' से प्रकाशित साहित्य ज़्यादा-से-ज़्यादा स्कूली बच्चों तक पहुंचे इस ओर आप ज़्यादा प्रयास करें। हो सके तो राज्य सरकारों के शिक्षा सचिवों तक इसकी प्रति पहुंचाकर सभी संस्थानों में अनिवार्य कराएं, व किसी तरह प्रचार करके ऐसा कुछ करें कि चकमक व संदर्भ घर-घर पढ़ी जाने वाली पत्रिका बन जाएं। हमारी शुभेच्छा साथ है।

आप जैसे मित्रों के कारण ही जेल में रहते हुए भी, दस-ग्यारह आध्यात्मिक-साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं उपहार स्वरूप हर माह मिलती रहती हैं, जिससे इस दो हज़ार के गांव में सैकड़ों लोगों का मनोरंजन व ज्ञानवर्धन होता है। आप सबको हम सबकी ओर से लाख-लाख बधाई।

राजकुमार गुप्ता
सी-1906, यार्ड-4
बंदीशाला, नाशिक, महाराष्ट्र

'संदर्भ' का 18वां अंक मिला। 'नींद सुलझी, अनसुलझी पहेली' लेख बहुत ही अच्छा, रोचक और जानकारी से युक्त था। इस लेख ने मुझे बहुत कुछ जानने के लिए प्रेरित किया।

'फुटबॉल कार्बन .....' लेख रसायन प्रेमियों के लिए तो आनंददायक था ही। मुझे एक शिकायत है कि इस लेख में इसके खोज के इतिहास के बारे में ज़्यादा और C_{60} के रचना, गुण इत्यादि के बारे में जानकारी कम है। अतः इसकी जानकारी अधूरी लगी। 'वह आदमी जो चमत्कार कर सकता था' कहानी का अगला भाग पढ़ने के लिए मैं बेचैन हूं। मैं गणित का ग्यारहवीं का छात्र हूं। अतः मैं चाहता हूं कि इंजिन के ऊपर थोड़ी सामान्य जानकारी से युक्त कोई लेख प्रकाशित किया जाए जिससे इसके बारे में भी ज्ञान बढ़े। मैं एक और शिकायत कर रहा हूं कि मुझे 'सन्दर्भ' का अंक लगातार नहीं मिल रहा।

सरोज तिवारी
शहडोल, मध्य प्रदेश

मुझे संदर्भ के अंक लगातार मिल रहे हैं। पढ़ कर लगा कि यह पत्रिका वास्तव में एक सराहनीय प्रयास है। अंक-18 में नींद के बारे में पढ़ कर वास्तव में कई अनसुलझी

गुत्थियां सुलझ गईं। मुर्गी के अण्डे पर प्रकाश का प्रभाव जान कर आश्चर्य हुआ।

संदर्भ के बारे में मैं आपको एक सुझाव देना चाहता हूं कि संदर्भ को पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया जाए। पत्रिका में एक वैज्ञानिक वर्ग पहेली भी शुरू की जाए। मुझे विश्वास है कि पत्रिका और भी रोचक हो जाएगी।

कुलविन्दर सिंह
रानी बाज़ार, बीकानेर

'स्कूल के सवाल ज़िंदगी के सवालों से फर्क क्यों?' बकौल प्रोफेसर यशपाल सोच के सागर में डूब गया और मुंह से बेसाख्ता निकला 'वाह'।

अंडे के विषय में बहुत बातचीत होती है लेकिन इनमें तथ्यों के स्थान पर पूर्वाग्रहों की प्रधानता रहती है। इस विषय पर सर्वथा तथ्य परक जानकारी प्रदान करने के लिए स्निग्धा जी को साधुवाद।

'नींद सुलझी अनसुलझी पहेली', 'क्यों पढ़ाते थे वैसे' लेख भी अच्छे रहे।

प्रदीप पंजाबी,
व्याख्याता, डाइट, मंदसौर, मध्य प्रदेश

आपके द्वारा भेजी गई सन्दर्भ मुझे बहुत ही अच्छी लगी। अंक-18 में फुटबॉल कार्बन वाला लेख बहुत ही अच्छा था। चित्र भी सब अच्छे थे। प्रोफेसर यशपालजी ने बुनियादी समस्याओं पर जो विचार रखे वे तो बहुत ही पसंद आए। 'अंडे, टैडपोल और बना मेंढक' बहुत ही सहजता से समझाया गया है। 'क्यों पढ़ाते थे वैसे?' लेख जो माधव केलकर द्वारा लिखा गया है कुछ मेरे जीवन से मिलता जुलता है।

भावेश पटेल, कृष्णा सॉ मिल
हरदा, ज़िला होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

संदर्भ का अंक 16 व 17 पढ़ा। इसमें भरत पूरे व दीपक वर्मा द्वारा लिखित 'सांस लेने के तरीके' से मुझे काफी नई जानकारी मिली। मैं कक्षा चौथी व छठी में विज्ञान पढ़ाती हूं। बच्चों को जब इसमें दिए गए चित्रों के माध्यम से श्वसन संबंधी अध्याय पढ़ाया गया तो मुझे लगा कि बच्चे अच्छी तरह से समझ रहे हैं। लेख की सरल भाषा ने पूरा लेख पढ़ने व समझने में मदद की।

मीना कालरा, अध्यापिका
विद्या भवन माध्यमिक विद्यालय
झामरा कोटड़ा, उदयपुर

एक मित्र से 'शैक्षिक संदर्भ' का मार्च-अप्रैल•1997 का अंक भेंट स्वरूप पढ़ने को मिला। 'आपने लिखा' स्तंभ में प्रकाशित रमेश श्योरान के पत्र

द्वारा विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए सक्रिय 'हरियाणा विज्ञान मंच' की जानकारी मिली।

वर्तमान समय की आवश्यकता, विज्ञान को बोधगम्य बनाकर, विमुख होते जा रहे छात्रों को इस विषय की ओर आकृष्ट करने की है। निःसन्देह 'शैक्षिक संदर्भ' का विज्ञान शिक्षण को सुगम बनाने का प्रयास सराहनीय है।

इसी अंक में प्रकाशित 'आवर्त सारणी का इस्तेमाल' में प्रदर्शित आवर्त सारणी में गुणों की आवर्तता की इलेक्ट्रॉन ऋणात्मकता को दर्शाने का संशोधित रूप संलग्न है।

नवम्बर '97 माह में मार्च-अप्रैल का अंक मिला। अतः व्यवस्था इस प्रकार हो कि समय पर प्रतियां मिल पाएं।

त. चक्रवर्ती, शा. उ. मा. विद्यालय
मानपुर, इंदौर

आवर्त सारणी में गुणों की आवर्तता से संबंधित सुधार 17वें अंक के पृष्ठ 7 पर प्रकाशित।

संपादक

'आपने लिखा' स्तंभ के अंतर्गत आने वाले खतों को लगभग उसी रूप में पेश किया जाता है जिस रूप में उन्हें लिखा गया होता है। एकाध जगह अर्थ स्पष्ट करने के लिए या फिर जगह की दृष्टि से उन्हें हल्का-सा संपादित करना पड़ता है।

संदर्भ – देरी से क्यों?

पाठकों की चिट्ठियां लगातार मिलती हैं कि संदर्भ उन्हें देरी से मिल रही है। हमने इस बारे में हाल ही में एक खत सभी को भेजा था। आपको मिला होगा।

पिछले कुछेक अंकों से संदर्भ अपने निर्धारित समय की बजाए दो से तीन महीने देरी से प्रकाशित हो रही है– जैसे कि जिस तरह की सामग्री हम प्रकाशित करना चाह रहे हैं उसको तैयार करने में अनुमान से अधिक समय लग जाता है। शुरुआत में हमने सोचा था कि एक समय बाद हम ऐसे नए लेखक ढूंढ पाएंगे, तैयार कर पाएंगे जो नई सामग्री तैयार करने में हमारी मदद कर पाएं। लेकिन अभी तक पुराने लेखकों की टीम में ऐसे बहुत से नए लोग जोड़ने में हम कामयाब नहीं हो पाए हैं।

फिर भी हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि इस दिक्कत से जल्दी उबर पाएं। तब तक हमारा साथ दीजिए।

संदर्भ समूह

पौधों में श्वसन, जड़ों में भी लेन्टिसेल

किशोर पंवार

संदर्भ के पिछले अंकों में जीव जगत में श्वसन के तरीकों को लेकर बातचीत चल रही है। इसी कड़ी का एक लेख 'पेड़ पौधों में श्वसन' 17वें अंक में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख उसी लेख की कुछ बातों पर टिप्पणी से शुरू होता है। साथ ही इसमें पेड़-पौधों के श्वसन के बारे में कुछ और जानकारी जोड़ी गई है।

संदर्भ का अंक-17 पढ़ा। पेड़-पौधों में श्वसन, सिरफिरे समुद्री केकड़े और ऊर्ध्वपातन विशेष रूप से पसन्द आए। पेड़-पौधों में श्वसन लेख में एक बहुत ही ज़रूरी मुद्दे को उठाया गया है। आमतौर पर पुस्तकों में 'जन्तुओं में श्वसन' पर तो ढेर सारी जानकारी मिल जाती है, परन्तु पौधों में श्वसन पर आवश्यक एवं सही जानकारी का अभाव है। पुस्तकों में इस विषय पर आधी-अधूरी या गोलमाल जानकारी ही मिलती है। अतः इस दिशा में संदर्भ का यह प्रयास सराहनीय है। उम्मीद है इससे कुछ धुंध छंटेगी, कुछ भ्रम दूर होंगे।

परन्तु अभी भी कुछ ऐसा है जिसे स्पष्ट करना ज़रूरी है। लेख में कुछ विरोधाभासी एवं भ्रमोत्पादक स्टेटमेंट भी हैं जिनकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। मसलन 'पौधों का श्वसन तंत्र' के अंतर्गत स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पूरे पेड़ में रिक्त स्थान होते हैं जो आपस में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। हवा इनमें पत्तियों और तने के छिद्रों से होकर प्रवेश करती है। इस तरह हवा प्रत्येक ऊतक के पास मौजूद होती है। ज़ाहिर है जड़ों में भी ऐसे रिक्त स्थान होते होंगे जहां हवा भरी रहती होगी। तो फिर जड़ों के बारे में चुप्पी कैसी।

स्टोमेटा - बहुपयोगी रंन्ध्र

'पत्तियों से' नाम के उपशीर्षक के अंतर्गत लिखा है: *'ऊतकों की बिनाई इतनी ढीली होती है कि उनके बीच काफी खाली जगह मौजूद होती है। इस खाली जगह में श्वसन रन्ध्र मौजूद होते हैं।'* उल्लेखनीय है कि इन खाली जगहों के ऊपरी हिस्से (Epidermis) पर रन्ध्र मौजूद होते हैं न कि खाली जगह में, जैसा कि लिखा गया है।

इसी तरह स्टोमेटा को विशिष्ट रूप से 'श्वसन रन्ध्र' कहना उचित नहीं है। क्योंकि इनका काम केवल श्वसन करना नहीं होता। वास्तव में इनसे गैसों का आदान-प्रदान विसरण द्वारा होता रहता है। ये तो केवल ऐसे नियंत्रित रास्ते हैं जिनसे हवा अन्दर बाहर आती जाती रहती है, जिसमें ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन व जलवाष्प होती है।

यह अलग बात है कि इस हवा में उपस्थित ऑक्सीजन श्वसन के काम आती है और कार्बन डाइऑक्साइड भोजन निर्माण में। दिन के समय वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में इन्हीं रन्ध्रों से जलवाष्प बाहर निकलती है। अतः स्टोमेटा को केवल 'श्वसन रन्ध्र' कहना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। ये तो बहुउपयोगी रन्ध्र हैं।

कहां कहां है लेन्टिसेल

हरे तने में स्टोमेटा और लेन्टिसेल दोनों पाए जाते हैं, जो श्वसन और भोजन निर्माण तथा अन्य व्यर्थ पदार्थों के आवाजाही के मार्ग होते हैं। चूंकि तने काफी मोटे होते हैं और उनकी सतह का क्षेत्रफल कम, अतः केवल स्टोमेटा से काम नहीं चलता। ऐसे में रन्ध्र और वातरन्ध्र (Lenticels) दोनों संयुक्त रूप से इस काम को अन्जाम देते हैं।

एक बात और, लेख में लेन्टिसेल की फोटो और काट का चित्र तो दिया है परन्तु इसके

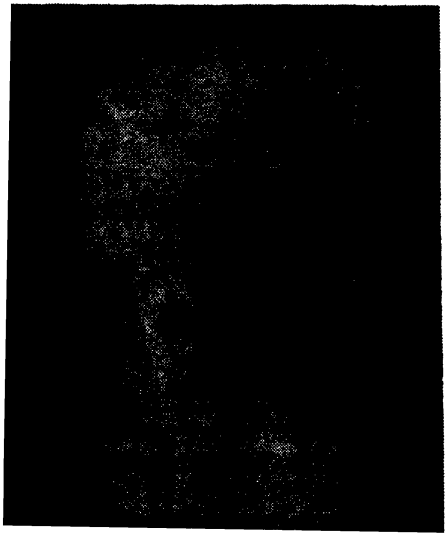

बोतल में लगाने वाला कॉर्क: इसमें दिख रहे काले काले धब्बे लेन्टिसेल हैं। *मूल आकार से तीन गुना बड़ा चित्र।*

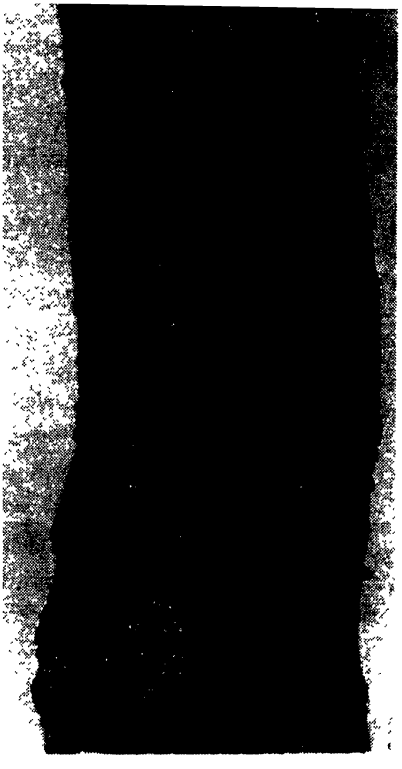

इस पेड़ के तने पर दिख रही आड़ी उभरी हुई रेखाएं लेन्टिसेल हैं। गुलमोहर के तनों पर भी लेन्टिसेल साफ-साफ देखे जा सकते हैं।

साथ ही अगर ये भी बता दिया जाता कि अपने आस-पास मिलने वाले पेड़ों में लेन्टिसेल देखे जा सकते हैं तो बेहतर होता। मसलन आलू की सतह पर, बोतल में लगाने वाले कॉर्क में, तथा सुबबूल और गुलमोहर की शाखाओं एवं तनों पर जो आड़ी भूरे रंग की खुरदुरी धारियां नज़र आती हैं वे लेन्टिसेल ही हैं। इनके तनों पर लाखों की संख्या में लेन्टिसेल देखकर तने के श्वसन में इनकी भूमिका का अन्दाज़ लगाना बहुत आसान है।

तीसरी बात, स्टोमेटा के वितरण को लेकर है। लेख में लिखा है 'ये स्टोमेटा पत्तियों के झुके हुए हिस्से या फिर आमतौर पर नीचे की तरफ होतें हैं'। यहां झुके हुए हिस्से से लेखक का क्या आशय है स्पष्ट नहीं है। साथ ही 'आमतौर पर नीचे की तरफ होते हैं' में भी सुधार की गुंजाइश है। यह बात आंशिक रूप से ही ठीक है। क्योंकि पौधों के एक बड़े समूह – 'एक बीज-पत्री' पौधों जैसे घास, बांस और गेहूं आदि की पत्तियों की दोनों सतहों पर समान संख्या में स्टोमेटा पाए जाते हैं।

जड़ों में भी लेन्टिसेल

'जड़ों में' नाम के उपशीर्षक में लिखा है 'दरअसल पत्तियों और तने के समान जड़ों में हवा के आवागमन के लिए कोई विशेष किस्म की रचनाएं नहीं हैं। ये सीधे ज़मीन में मौजूद पानी से ऑक्सीजन सोख लेती हैं।' इस संदर्भ में ये स्पष्ट करना ज़रूरी है कि जड़ों में भी तनों के समान लेन्टिसेल पाए जाते हैं। ऐसे तनों और जड़ों में

जिनमें पेरीडर्म* बनती है, आवश्यक हवा का आदान-प्रदान लेन्टिसेल द्वारा होता है। लेन्टिसेल के नीचे अनगिनित अन्तरा-कोशीय खाली स्थान (Intercellular spaces) होते हैं, जो लेन्टिसेल के ज़रिए बाहरी वातावरण से संपर्क में होते हैं। इसके अलावा फैलोजन में भी अन्तरा-कोशीय अवकाश मिलते हैं। जैसे-जैसे तने और जड़ें पुरानी और मोटी होती जाती हैं नए लेन्टिसेल विकसित होते रहते हैं। पूरे पौधे के अन्तरा-कोशीय स्थानों में हवा भरी रहती है। हवा से भरे ये स्थान आपस में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं जिससे पूरे पेड़ में एक 'रिक्त अवकाश तंत्र' (Air Space System) बन जाता है जो पत्तियों, तनों और जड़ों में स्टोमेटा और लेन्टिसेल द्वारा बाहर की ओर खुलता है। इस तरह विसरण के द्वारा अंदर आने वाली हवा पौधे के आंतरिक भागों से सीधे संपर्क में आती जाती रहती है। इसके अतिरिक्त निम्न बातों पर भी गौर करना उचित होगा।

पुराने तनों में हवा लेन्टिसेल द्वारा प्रवेश करती है तथा अन्तरा-कोशीय अवकाशों से होकर तने तथा जड़ में पहुंचती है।

जड़ का मुख्य भाग कॉर्टेक्स* का बना होता है जिसमें ढेर सारे रिक्त कोशीय अवकाश होते हैं जो जड़ों की आन्तरिक कोशिकाओं के लिए ज़रूरी होते हैं।

हवाई जड़ें

ऐसे पेड़-पौधे जो दलदली क्षेत्रों में उगते हैं – जैसे एविसीनिया आदि में हवाई श्वसन जड़ें बनती है जिन पर साफ तौर से स्टोमेटा तथा लेन्टिसेल पाए जाते हैं।

अन्तरा-कोशीय अवकाशों में स्थित हवा को पानी या द्रव में विसरित होकर ज़्यादा लंबी दूरी तय नहीं करनी पड़ती। हवा में पानी की तुलना में ऑक्सीजन तीन लाख गुना ज़्यादा तेज़ी से गमन करती है। और पौधों का आंतरिक स्थान तंत्र अन्दर तक के ऊतकों के लिए सीधे हवा की व्यवस्था दर्शाता है।

उल्लेखनीय है कि यदि ऑक्सीजन को द्रव से होकर विसरित होना पड़े

* पेरिडर्म: पुराने तनों और जड़ों की बाहरी छाल। फैलोजन इसी का हिस्सा होता है।

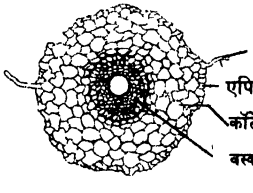

कॉर्टेक्स: जड़ में एपिडर्मिस और वस्क्यूलर सिलिंडर के बीच का भाग।

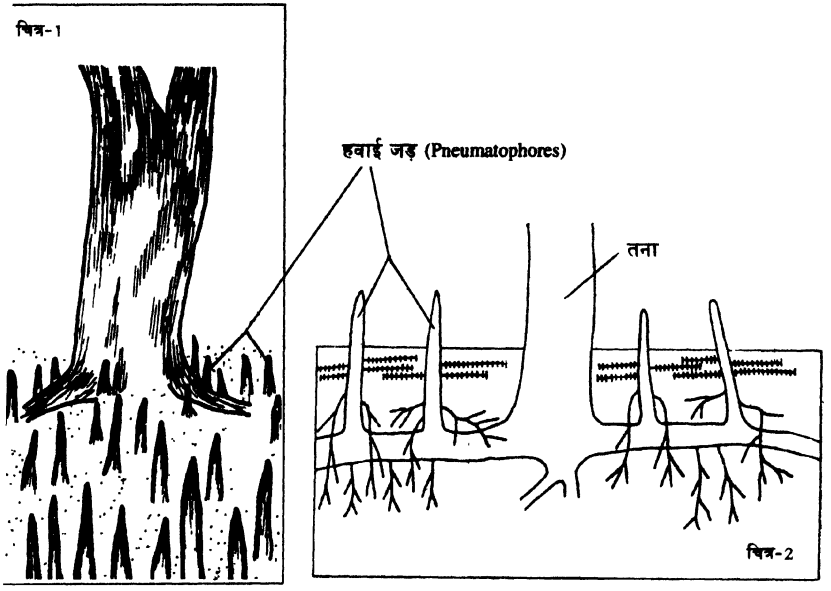

दलदली क्षेत्रों में उगने वाले पौधों में जड़ों की कुछ शाखाएं ज़मीन के बाहर निकल आती हैं। इनका मुख्य काम श्वसन ही होता है। 1. ज़मीन से बाहर निकली जड़ों का रेखाचित्र; 2. ज़मीन के भीतर इन जड़ों की स्थिति। *(दूसरा चित्र एवीसीनिया का है)।*

तो यह पौधों में ज़्यादा-से-ज़्यादा एक मिली मीटर तक प्रवेश कर सकती है। अगर जड़ों की कोशिकाओं का श्वसन पूर्णतः द्रव से विसरित होकर पहुंची ऑक्सीजन पर आधारित हो तो ज़्यादा मोटी जड़ों को ऑक्सीजन नहीं मिलेगी और वे दम तोड़ देंगी।

प्रयोगों से पता चला है कि यदि पौधों का 'रिक्त स्थान तंत्र' अवरुद्ध हो जाए तो वे जल्दी मर जाते हैं। ऐसा अक्सर जलाक्रान्त मिट्टी में होता है। यह भी देखा गया है कि जब मिट्टी में हवा की मात्रा कम होती है तो पौधों में बड़े-बड़े आन्तरिक अवकाश बनते हैं। ऐसी स्थिति में जड़ों में श्वसन को मदद करने के लिए ऊपर के रिक्त अवकाशों से होकर हवा नीचे की ओर बहती है। ऐसा मक्का में देखा गया है। चावल की जड़ों में भी ऑक्सीजन की सप्लाई तनों से जड़ों की ओर हवा के बहाव से होती है।

हालांकि मीज़ोफाइट्स* ,(समोद

*मीज़ोफाइट्सः ऐसे पेड़-पौधे जो नमी और तापमान की औसत परिस्थितियों में पनपते हैं। यानी कि जहां न तो ताप अधिक होता है न ही नमी। ज़मीन भी न तो जलाक्रान्त होती है और न ही उसमें लवण अधिक होते हैं।

भिद) में जड़ों के श्वसन को लेकर विशेष जानकारी नहीं मिलती परन्तु जलीय और दलदली पौधों के बारे में जानकारी है। मसलन चावल में ऑक्सीजन की पर्याप्त उपलब्धता के लिए ऊपरी गांठों से भी जड़ें निकलने लगती हैं। और कमल के पौधे में पत्तियों से जड़ों के कन्दों तक ऑक्सीजन पहुंचाने की सुन्दर व्यवस्था होती है। पत्तियों के डंठल में उपस्थित बड़े-बड़े 'वायु कोष्ठ' इसके लिए पड़ाव का काम करते हैं। इनके ज़रिए कन्दों को लगातार ऑक्सीजन मिलती रहती है।

श्वसन के संदर्भ में जड़ और पत्तियों की स्थितियां बिलकुल भिन्न हैं। एक ओर पत्तियां और तना जहां हमेशा हवा से घिरे रहते हैं, वहीं जड़ कभी पानी में डूबी रहती है तो कभी उसके चारों ओर हवा ज़्यादा होती है, पानी कम। पर्याप्त बारिश या सिंचाई होने पर जड़ों के आसपास पानी की अधिकता होती है और हवा की कमी। तो पानी की कमी की स्थिति में ठीक इससे उल्टा होता है, यानी हवा ज़्यादा

लगातार चलती प्रक्रिया

बॉक्स में दी गई जानकारी से स्थिति स्पष्ट नहीं होती। पूरा पढ़ने के बाद कुछ खास हाथ नहीं आता। पहली बात तो यह कि "गैसीय आदान-प्रदान की दो क्रियाएं लगातार चलती रहती हैं" गलत है। दोनों क्रियाएं केवल दिन में चलती हैं लगातार, रात में नहीं।

दूसरा, पूरा बॉक्स पढ़कर भी यह पता नहीं चलता कि कौन-सी गैस पौधे से कब बाहर निकलती है। जबकि यह साफ है कि दिन में सूर्य के प्रकाश में पत्तियों से केवल ऑक्सीजन ही बाहर निकलती है क्योंकि प्रकाश संश्लेषण की दर श्वसन से 5 से 10 गुना ज़्यादा होती है। अतः पत्तियों में श्वसन से बनी कार्बन डाइऑक्साइड भी प्रकाश संश्लेषण में काम आ जाती है और हवा की कार्बन डाइऑक्साइड स्टोमेटा से अन्दर जाती है।

केवल बहुत सुबह और शाम के वक्त जब प्रकाश की मात्रा कम होती है तब श्वसन में निकली कार्बन डाइऑक्साइड और प्रकाश संश्लेषण में बनी ऑक्सीजन क्रमशः प्रकाश संश्लेषण और श्वसन के लिए काम आ जाती है। ऐसे में पत्तियों से किसी भी गैस का विसरण नहीं होता।

परन्तु रात के वक्त प्रकाश की अनुपस्थिति में पत्तियों में केवल श्वसन के चलने से ऑक्सीजन हवा से अन्दर जाती है और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकलती है।

तो पानी कम।

कुल मिलाकर इन तथ्यों को ध्यान में रखने से ऐसा लगता है कि छोटी और बहुत पतली जड़ों के लिए तो यह संभव है कि पानी में घुलित ऑक्सीजन से अपना काम चलाती हों परन्तु बड़े बहुवार्षिक पेड़ों की मोटी जड़ों द्वारा ऐसा कर पाना संभव नहीं है, क्योंकि हवा का पानी में विसरण एक बहुत ही धीमी प्रक्रिया है। वहीं इन जड़ों पर लेन्टिसेल से भी इंकार नहीं किया जा सकता।

अतः इस बात की संभावनाएं ज़्यादा हैं कि जड़ों के अग्र भाग, जो हमेशा पानी की तलाश में होते हैं, से तो हवा घुलित अवस्था में अन्दर विसरित हो; परन्तु जड़ के पुराने मोटे भागों में जहां छाल भी होती है, लेन्टिसेलों से हवा का आदान-प्रदान होता है। मुझे लगता है कि इस विषय पर अभी और विचारों के आदान प्रदान की ज़रूरत है ताकि स्थिति स्पष्ट हो सके।

हां, अंत में दिए गए प्रयोगों के बारे में भी कुछ सवाल; लेख श्वसन का और प्रयोग वाष्पोत्सर्जन के हैं। बात कुछ जमी नहीं। परन्तु इसे पढ़ कर मुझे यह प्रेरणा ज़रूर मिली कि क्यों न कुछ श्वसन से संबंधित प्रयोग करके देखे जाएं। तो मैं और मेरी बिटिया भिड़ गए श्वसन को लेकर कुछ प्रयोग करने। हमने जो किया वह आप भी आजमा के देखिए।

दो प्रयोग

पहला प्रयोग: अरबी या इसी जाति की मोटे डंठल वाली एक पत्ती लीजिए। एक थाली में पानी भर कर इसे चित्रानुसार पूरा डुबा दें और डंठल की ओर से ज़ोर से फूंकें। पत्ती की निचली सतह से बुलबुले उठते नज़र आते हैं। ये पौधे में अन्तरा-कोशिकीय संबंध बताते हैं, और पत्ती से लेकर डंठल तक में उनकी उपस्थिति दर्शाते हैं।

दूसरे प्रयोग में हमने अरंडी की पत्ती को पेट्रोल वाली रबर की नली से चित्रानुसार जोड़कर हवा खींची *(अगले पृष्ठ पर ऊपर वाला चित्र)*। नली की पानी में डूबी सतह से बुलबुले निकलते दिखाई देते हैं। स्पष्ट है पत्तियों पर उपस्थित स्टोमेटा से हवा पत्ती के अन्दर प्रवेश करती हुई डंठल तक आती है।

यह प्रयोग केवल डंठल से भी किया जा सकता है।

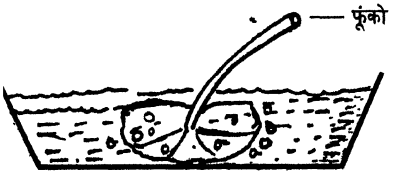

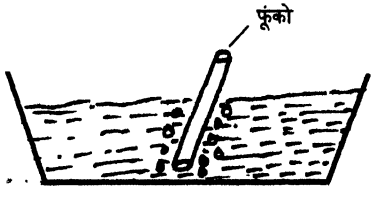

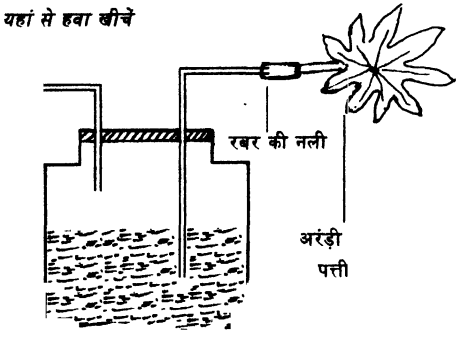

हवा स्टोमेटा से होकर प्रवेश करती है। डंठल में भी रिक्त अवकाश होते हैं।

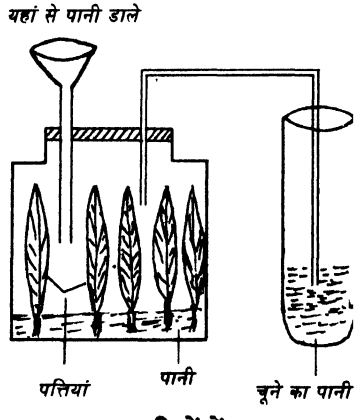

पत्तियों में श्वसन

दूसरा प्रयोग: इस प्रयोग को करने के लिए चित्र के अनुसार उपकरण जमाकर चौड़े मुंह वाली बोतल में, या बडी टेस्ट ट्यूब या उफननली लेकर उसमें 10-15 कनेर या गुलाब की पत्तियां इस प्रकार रखीं कि उनके डंठल वाले हिस्से नीचे की ओर थोड़े से पानी में डूबे रहें।

एक या दो घन्टे बाद बोतल की हवा को ऊपर से पानी डालकर विस्थापित किया और उसे चूने के पानी या फिनॉफ्थेलीन के रंगीन घोल से गुज़ारा। नतीजा साफ था – चूने का पानी दूधिया हो गया और फिनॉफ्थेलीन के रंगीन घोल का रंग उड़ चुका था।

जिस बोतल में पत्तियां रखी थीं उसे काले कार्बन या काले कपड़े से ढंक कर रखें या उपकरण को अंधेरे में रखें। आप सोच सकते हैं कि ऐसा करना क्यों ज़रूरी है।

चूने का पानी बोतल में उपस्थित हवा में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड की वजह से तो दूधिया नहीं होता इसे पक्का करने के लिए प्रयोग के पहले या बाद में एक अन्य बोतल (जिसमें पत्तियां न रखी गई हों) की हवा को विस्थापित कर चूने के पानी या फिनॉफ्थेलीन के रंगीन घोल से गुज़ार कर ज़रूर देखें।

किशोर पंवार: शासकीय महाविद्यालय सेंधवा, जिला खरगोन में वनस्पति शास्त्र के प्राध्यापक।

बादल ऊपर क्यों लटका

संदर्भ के अंक 17 में बच्चों द्वारा पूछे गए बादलों से जुड़े सवालों के जवाब दे रहे हैं इस बार।

सवाल: जब पानी को गरम करते हैं और पानी वाष्प बनकर ऊपर जाकर बादलों का रूप धारण कर लेता है तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से वह नीचे क्यों नहीं खिंचता? बादल ऊपर ही क्यों रहता है?

जवाब: जब हम पानी को किसी बर्तन में गरम करते हैं तो उस के आसपास हवा की धारा कुछ इस तरह बहती है।

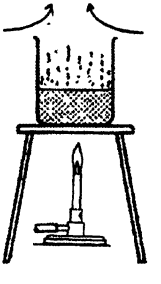

गरम हवा का घनत्व ठंडी हवा से कम होता है। अतः गरम हवा ऊपर की ओर उठती है और आसपास की ठंडी हवा उसका स्थान लेती है।

पानी को गरम करने से जो वाष्प

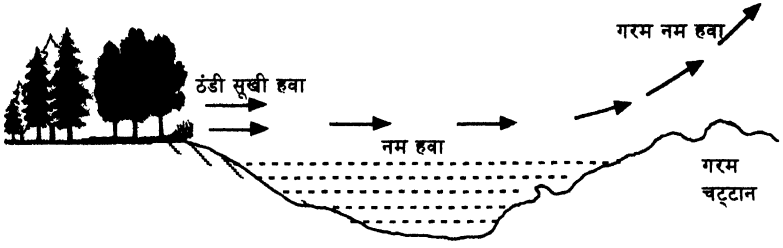

बनती है वह एक तो हल्की (कम घनत्व वाली) होती है और गरम भी। अतः वह गरम हवा के बहाव के साथ ऊपर उठती है।

यही प्रक्रिया समुद्र, झीलों और नदियों के साथ भी होती है। यहां ऊष्मा का मुख्य स्रोत सूर्य है।

पर पृथ्वी का वायुमंडल पारदर्शी होने के कारण सूर्य की किरणें हवा को गरम किए बगैर पृथ्वी की सतह पर आ पहुंचती हैं और उसे तपाती हैं। अतः दिन में गरम हवा का ऊपर की ओर निरन्तर बहाव रहता है। किसी भी जलाशय के पास ऊपर की ओर बहने वाली गरम हवा अपने में नमी अर्थात जलवाष्प समेट लेती है।

बादल कैसे बनते हैं? इसमें दो मुख्य बातें हैं। पहली बात यह, कि हवा में जलवाष्प की एक खास मात्रा ही समा सकती है। यह सीमा तापमान पर निर्भर करती है। गरम हवा में ज़्यादा और ठंडी हवा में कम जलवाष्प समा सकती है। अब गरम, नम हवा को अगर ठंडा किया जाए, तो उसमें समायी हुई जलवाष्प पानी की बूंदों में तब्दील होने लगती है। इस क्रिया को संघनन कहते हैं। संघनन से बनने वाली पानी की बूंदें कभी बादल तो कभी कोहरे का रूप लेती हैं। रात को जब ज़मीन ठंडी हो जाती है तो उसके संपर्क में आने वाली हवा भी ठंडी हो जाती है। यदि उसमें जलवाष्प की मात्रा अधिक हो तो संघनित पानी ओस के रूप में दिखाई देता है।

ओस या कोहरे में, और बादल में मुख्य अंतर है बादलों की ऊंचाई। इसमें एक दूसरी बात आ जाती है। जैसे-जैसे हम वायुमंडल में ऊपर की ओर उठते हैं, तापमान घटता जाता है। यानी कि हवा की ऊपर की परतें ठंडी होती हैं, नीचे वाली परतों की तुलना में। समुद्र और दूसरे बड़े जलाशयों से उठने वाली गरम नम हवा जैसे-जैसे ऊपर की ओर उठती है, वह ठंडी

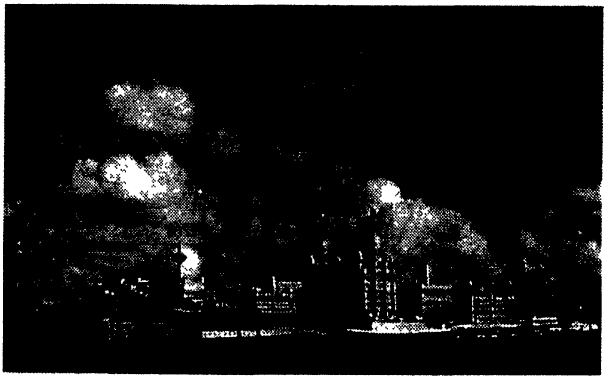

क्यूमुलस प्रकार का बादल जो बहुतायत में पाया जाता है। इस तरह के बादल धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हैं और यह गोभी के फूल जैसा आकार ले लेता है। आमतौर पर यह दो किलोमीटर या और अधिक ऊंचाई पर पाया जाता है।

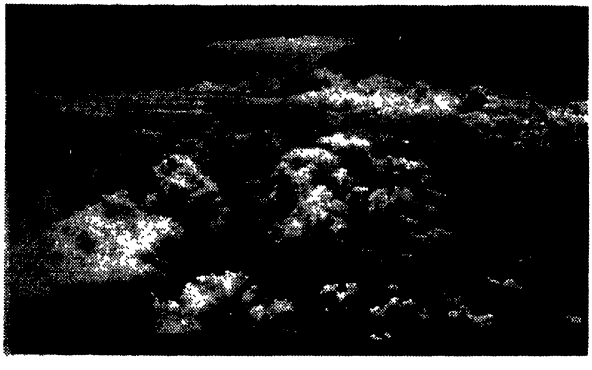

क्यूमुलोनिंबस बादल की एक छटा। इस बादल का निचला तल लगभग एक किलोमीटर पर होता है और इसका शीर्ष आठ-दस किलोमीटर तक पहुंच जाता है। एक खास बात है बादल के शीर्ष का सपाट होना।

परतों के संपर्क में आती है। इससे उसका तापमान गिरने लगता है। एक समय ऐसा आता है जब उसमें मौजूद जलवाष्प उसमें समा नहीं सकती।

इस संघनन में हवा में स्थित धूल के कण मदद करते हैं। संघनित पानी की बूंदों को हम बादलों के रूप में देखते हैं।*

पृथ्वी की सतह से ऊंचाई के अनुसार बादलों को निचले, मध्यम और ऊंचे बादलों में बांटा जा सकता है। निचले बादल एक कि.मी. से भी कम ऊंचाई पर होते हैं। कभी-कभी तो ये धरती को छूने लगते हैं – अर्थात इन्हें कोहरे का परिवर्तित रूप माना जा सकता है। अधिक धूल-कणों की मौजूदगी के कारण ये प्रायः काले नज़र

इस तरह एक बात साफ हो जाती है कि अगर ऊपर बताए गए कारण (पृथ्वी की तपी सतह से संपर्क) के अलावा किसी दूसरे कारण से भी हवा का ऊपर की ओर बहाव हो, तो भी आमतौर पर बादल बनेंगे।

आते हैं। मध्यम ऊंचाई के बादल अधिकतर 1-3 कि.मी. की ऊंचाई पर होते हैं, जबकि ऊंचे बादल अक्सर 4 कि.मी. से अधिक ऊंचाई पर होते हैं। ये ऊंचे बादल पानी के नहीं बल्कि बर्फ के रवों के बने होते हैं, क्योंकि इतनी ऊंचाई पर तापमान शून्य से कहीं कम होता है। कुछ बादल ऐसे भी होते हैं जिनका निचला भाग एक किलोमीटर से कम ऊंचाई पर रहता है, जब कि उनका शिखर दस किलोमीटर से भी अधिक ऊंचाई को छूता है। ये प्रचंड बादल अक्सर गरज के साथ तेज़ बारिश लाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि बादलों में स्थित पानी की बूंदों पर (या बर्फ के रवों पर) गुरुत्व बल लगता है कि नहीं। अवश्य लगता है। और इसके कारण ये बूंदें नीचे की ओर गिरती हैं। इन के गिरने की प्रवृत्ति का विरोध करती है हवा। अगर हवा स्थिर हो और उस समय पानी की बूंद नीचे गिर रही हो, तो उसमें उत्पन्न श्यान बल (विस्कोसिटी) के कारण बूंद के गिरने का अन्तिम वेग* बहुत कम होता है। बूंद जितनी छोटी, उसका अन्तिम वेग उतना ही कम होता है। उदाहरणतः 0.02 मि.मी. व्यास की बूंद का अन्तिम वेग लगभग 3 मि.मी. प्रति सेकंड होता है, जबकि 0.1 मि.मी. व्यास की बूंद का अन्तिम वेग लगभग 10 से.मी. प्रति सेकंड होता है।

यहां हमने हवा को स्थिर माना है। परन्तु हवा स्थिर नहीं होती, बल्कि बादलों में और उनके नीचे हवा का ऊपर की ओर बहाव रहता है। छोटे बादलों में हवा का वेग औसतन 3-4 से.मी. प्रति सेकंड होता है जबकि बड़े गरज वाले बादलों में यह वेग 10 मीटर प्रति सेकंड तक हो सकता है। हवा का यह बहाव बादलों से पानी की छोटी बूंदों को गिरने नहीं देता। कुछ बूंदें ऐसी होती हैं जिनका अन्तिम वेग हवा के ऊर्ध्वगामी वेग से ज़्यादा होता है। अतः ये हवा के विरोध के बावजूद नीचे की ओर चल पड़ती हैं। आगे क्या होता है यह निर्भर करता है बूंद के व्यास पर और हवा की नमी पर। अगर बूंद छोटी हो और नीचे हवा में नमी कम हो तो वह पृथ्वी की सतह पर पहुंचने से पहले – कहीं तो कुछ मीटर की दूरी तय करते ही – वाष्पीकृत हो जाएगी। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि नीचे का तापमान

* *अन्तिम वेग – अगर किसी माध्यम में कोई वस्तु स्वतंत्र रूप से गिर रही हो तो पहले तो उसकी गति बढ़ती जाती है परन्तु कुछ समय बाद उस माध्यम के प्रतिरोध की वजह से वह वस्तु एक स्थिर गति से नीचे की तरफ गिरती है। इस गति को उस वस्तु का अंतिम वेग कहते हैं। माध्यम के इसी प्रतिरोध को श्यान बल या विस्कोसिटी कहते हैं।*

बादल के तापमान से अधिक होता है। कुछ बादलों के साथ ऐसा ही होता है – वे वाष्प से बनते हैं और वाष्प में लीन हो जाते हैं।

लेकिन अगर हवा का वेग बूंदों को रोकने के लिए काफी न हो, और वाष्पीकरण की प्रक्रिया बूंद को पूरी तरह गुल न कर पाए तो? ..... तो चिन्ता किस बात की, यही तो है वह जीवनदायिनी धारा, जिसका हम गर्मी के दिनों में बेताबी से इंतज़ार करते हैं! जी हां, गुरुत्व बल के कारण नीचे गिर कर पृथ्वी की सतह तक पहुंचने वाली ये बूंदें ही बारिश कहलाती हैं। बादल को बरखा में अंजाम देने वाला बल गुरुत्वाकर्षण ही है।

सवाल: शाम के समय बादलों के रंग अलग-अलग कैसे हो जाते हैं?

जवाब: पहला सवाल तो यही है कि आखिर बादलों का रंग अक्सर सफेद क्यों होता है – और कभी-कभी एकदम घना काला। इसका जवाब वैसे तो आसान-सा है कि बादल इतने हल्के-फुल्के होते हैं कि बहुत ही कम प्रकाश सोख्ते हैं और प्रकाश के समस्त रंगों को बराबर-बराबर बिखेर देते हैं। इसलिए उनका रंग सफेद ही तो होगा न।

यह सही है कि अगर बादल की किसी एक छोटी-सी बूंद की बात करें तो कुछ विशेष दिशाओं मे देखने पर उसमें रंग नज़र आएंगे। परन्तु बादलों में पानी की बूंदें बहुत ही छोटी होती हैं और वे सब भी बहुत अलग-अलग साईज़ की होती हैं इसलिए कुल मिलाकर बादल में से टकराकर निकलने वाले प्रकाश में सब रंग तकरीबन बराबर रूप में मौजूद रहते हैं और इसीलिए बादल झक्क सफेद दिखता है।

जब भी बादल काला दिखता है तो उसके प्रमुखतः दो कारण होते हैं।

अगर बादल की मोटाई बहुत ही ज़्यादा हो और सूर्य बादल के पीछे की

देर दोपहर बाद बादलों का एक नज़ारा जिसमें बादलों के पीछे से आती रोशनी में एक गहरे बादल का बीच का हिस्सा तो गहरा काला दिख रहा है लेकिन बादल की किनार चांदी की तरह चमक रही है।

तरफ हो तो प्रकाश इतने मोटे बादल में से छनकर नहीं आ पाता या कम मात्रा में आता है – ऐसी स्थिति में बादल गहरा काला या मटमैला दिखता है।

विशाल बादल सफेद तभी दिखेगा अगर उस पर सामने से प्रकाश पड़ रहा हो। परन्तु ऐसी स्थिति में भी अगर वह किसी दूसरे बादल की परछाई में आ जाता है तो काला ही दिखेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि बादल सफेद हो या काला (आगे चलकर बात करेंगे चाहे लाल हो, पीला या अन्य किसी भी रंग का) उन सब में पानी की बूंदें तो एक-सी ही होती हैं – ऐसा नहीं कि काले बादल मटमैली बूंदों से बने हों। अंतर सिर्फ इस बात का पड़ता है कि बादल में से प्रकाश निकल पा रहा है कि नहीं, या बादल पर सामने से रोशनी पड़ रही है अथवा नहीं।

इसीलिए अक्सर घने-विशाल बादलों की किनार सफेद चमकती हुई दिखती है – अगर सूर्य उनके पीछे हो, क्योंकि किनारी पर बादल इतना घना नहीं होता और रोशनी उसमें से गुज़रकर एक चमकती हुई किनार बना देती है।

अब असली सवाल पर आ जाते हैं जो इस बात से जुड़ा है कि आखिर शाम के समय (या सुबह के समय) सूर्य के प्रकाश का रंग क्यों बदल जाता है। इसका जवाब आसमान के नीले रंग से जुड़ा है।

सूर्य की रोशनी में लाल से लेकर बैंगनी तक अलग-अलग रंगों की किरणें होती हैं। ये किरणें हवा के अणुओं से टकरा कर बिखर जाती हैं (जिसे अक्सर

'स्केटरिंग' कहते हैं)। इनमें बैंगनी और नीले रंग की किरणों की तरंग लंबाई कम होती है और ये सबसे ज़्यादा बिखरती हैं। फलस्वरूप आसमान नीला दिखाई देता है। (इस पर विस्तृत चर्चा है संदर्भ के तीसरे अंक में, पृष्ठ 9 पर।)

हवा में मौजूद कण किरणों को बिखराने के साथ-साथ उन्हें सोख भी लेते हैं। परन्तु दोपहर में सूर्य की रोशनी इतनी तेज़ होती है कि काफी मात्रा में नीली-बैंगनी किरणें निकल जाने पर भी ज़्यादा अन्तर नहीं पड़ता।

परन्तु शाम को सूर्य की किरणें वायुमंडल के अंदर काफी ज़्यादा दूरी तय करती हैं। इससे स्केटरिंग भी ज़्यादा होती है और इसलिए ज़्यादातर नीली-बैंगनी किरणें वातावरण के कणों द्वारा सोख ली जाती हैं। ज़्यादा मात्रा में नीली-बैंगनी किरणों के निकल जाने से सूर्य की रोशनी में लाल या नारंगी रंग का पलड़ा भारी हो जाता है। अतः सूर्योदय या सूर्यास्त के समय सूर्य लाल गोले की तरह दिखाई देता है।

अब बादलों का रंग बदलना स्वाभाविक लगता है। लाल-नारंगी किरणों को परावर्तित करने वाले बादल उसी रंग के दिखते हैं। या फिर बादल घने न हों और उनमें से रंगीन प्रकाश छनकर आ रहा हो तो भी वे रंगीन दिखेंगे। है न आसान-सी बात?

कुछ ऐसी बाते हैं जो इस सीधे जवाब को थोड़ा जटिल कर देती हैं। बादल से टकराने से पहले किरणों ने वायुमंडल में कितनी दूरी तय की है? और इस पर भी कि बादल से टकराने के बाद हम तक पहुंचने के लिए किरणों को कितनी दूरी तय करनी पड़ती है। ये दोनों बातें निर्भर करती हैं बादल की ऊंचाई पर, क्षितिज से उसकी दूरी पर और सूर्य की अवस्थिति पर (यानी कि क्षितिज से कितना ऊपर है वह उस समय); जो बादल पहले सफेद दिख रहा था, वही सूर्य के थोड़ा नीचे जाते ही पीला दिखने लगता है। अगर बादल सूर्य की तरफ पश्चिमी दिशा में है, तो उसमें से होकर भी कुछ प्रकाश गुज़रता है। इस स्थिति में बादल का रंग इस बात पर निर्भर करेगा कि वह कितना घना है और उसकी मोटाई कितनी है। मौका मिले तो इस बारे में फिर बात करेंगे। परन्तु संदर्भ के इस अंक का मुखपृष्ठ देखकर आप यह तो अहसास कर ही सकते हैं कि एक जैसी बूंदों से बने हुए बादल कितने रंग दिखा सकते हैं!

(ये सवाल पूछा था सौरभ बंसल, बॉम्बे रोड, हरदा, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र. और रामप्रसाद, कक्षा आठवीं, पोस्ट बालागुड़ा, मंदसौर, म. प्र. ने।)

इस जवाब को तैयार किया है **अमिताभ मुखर्जी** ने, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र पढ़ाते हैं।

(इस बार का सवाल पृष्ठ 88 पर)

पावरझंडा, 57 सालों में...

मुकेश मालवीय

मध्यप्रदेश में नर्मदा के दक्षिण में सतपुड़ा पहाड़ों में फैला हुआ है बैतूल ज़िला। इस ज़िले की शाहपुर तहसील में सड़क और शहर से तकरीबन बारह किलो मीटर दूर सतपुड़ा पहाड़ों की तलहटी में बसा यह गांव पावरझंडा जंगल से घिरा हुआ है। इसी गांव के स्कूल का किस्सा है यह।

1940 में यानी कि अंग्रेज़ों के ज़माने में शुरू हुआ था पावरझंडा गाव का यह स्कूल। स्कूल का किस्सा बयान करने से पहले आइए गांव के बारे में कुछ जानकारी हासिल कर लें।

भूमि का वितरण

गांव बहुत बड़ा नहीं है, कुल जमा हज़ार-एक लोग रहते हैं। करीब 148 परिवार गोंड आदिवासियों के हैं और कुछ चार-पांच दलित परिवार हैं। बाकी 52 परिवार गौली जाति के हैं। तो आप कह सकते हैं कि यह एक आदिवासी गांव है। इन दोनों जाति के समूहों का आर्थिक स्तर लगभग एक-सा है – मवेशी, जंगल व ज़मीन इनकी जीविका के प्रमुख साधन हैं।

इस गांव में 212 हेक्टेयर* कृषि भूमि है। इस में से 40 हेक्टेयर भूमि 20 वर्ष पहले एक छोटा बांध बन जाने के कारण सिंचित है। वर्तमान में गांव की जनसंख्या 1020 है।

एक हैक्टेयर = 2.5 एकड़; एक एकड़ = 4000 मीटर^2

पावरझंडा में भूमि वितरण

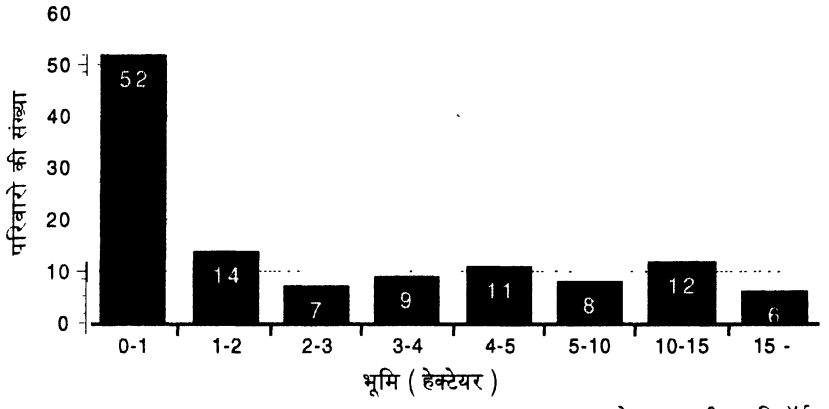

स्रोत: पटवारी का रिकॉर्ड

जैसा कि आप तालिका में देख सकते हैं यहां के ज़्यादातर लोग छोटे किसान हैं। मिट्टी कमज़ोर होने के कारण इनकी पूरी गुज़र-बसर खेती से नहीं हो पाती।

खेती के अलावा दूसरा बड़ा काम पशु पालना है। लगभग हर परिवार में 5 से लेकर 25 तक मवेशी हैं जिनको चराने का काम परिवार का एक सदस्य करता है।

जंगल के पास बसे होने के कारण लोग जंगली फसल, महुआ, गुल्ली, सागौन बीज, आंवला, चिरोंटिया बीज, आचार गुठली, तेन्दुपत्ता आदि इकट्ठा कर इन्हें बेचते हैं। इस काम में घर के बच्चे और बड़े सभी बराबर का सहयोग करते हैं।

चौथा प्रमुख काम है कृषि मज़दूरी या अन्य मज़दूरी का काम। वर्ष में दो बार लगभग 100 से 150 लोग इस गांव से सोयाबीन और गेंहू की कटाई के समय लगभग दो महीने के लिए गांव से बाहर चले जाते हैं। इन बाहर जाने वाले मज़दूरों में 10 से 15 साल के बच्चों की संख्या भी काफी ज़्यादा होती है।

रोज़ी रोटी के इस संघर्ष में इन परिवारों के बच्चों की शिक्षा की हालत कैसी है, आइए देखें।

शिक्षा का स्तर : स्कूल छोड़ने का दर

पावरझंडा में एक प्राथमिक शाला खुली 1940 में। इस तरह 57 साल पहले यह गांव आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आया। स्कूल में दो-एक शिक्षक सदैव रहे हैं। एक अच्छी खासी तीन चार कमरे की बिल्डिंग है और साथ ही खेलने के लिए मैदान भी है।

1997 तक इस शाला में 754 बच्चे दर्ज़ हुए यानी कि 57 साल में 754 बच्चे। इसका अर्थ यह हुआ कि हर साल औसतन तेरह नए बच्चे शाला में दाखिला लेते थे।

इनमें से कितने बच्चे 5 साल शिक्षा प्राप्त करके उत्तीर्ण हुए? कितने बच्चे पढ़ाई बिना खतम किए स्कूल छोड़ गए? इसके लिए हम 1992 तक दाखिल बच्चों के ब्यौरे को देखेंगे। क्योंकि 1993 के बाद जो दाखिल हुए वे अब भी शाला में अध्ययनरत हैं।

1940 से 1992 तक कुल 648 बच्चे दर्ज़ हुए थे। इनमें से केवल 115 बच्चे (18%) पांचवी उत्तीर्ण हुए। बाकी बच्चों ने अलग-अलग कक्षाओं में स्कूल छोड़ दिया। कितने बच्चों ने कौन-सी कक्षा के दौरान स्कूल छोड़ा इसका विवरण तालिका में है।

स्कूल ा की दर

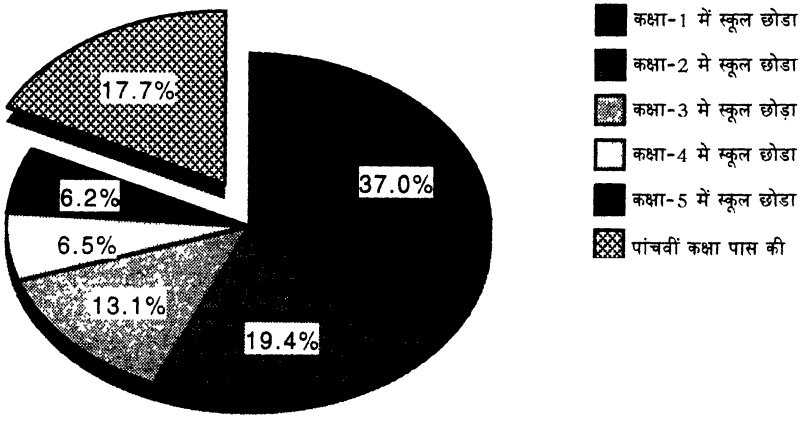

	दर्ज़ बच्चे	स्कूल छोड़ा	कक्षा का प्रतिशत	कुल का प्रतिशत
कक्षा-1	648	240	37.0	37.0
कक्षा-2	408	126	30.1	19.4
कक्षा-3	282	85	30.1	13.1
कक्षा-4	197	42	21.3	6.5
कक्षा-5	155	40	25.8	6.2

52 वर्ष के दौरान पहली कक्षा में दर्ज़ बच्चे = 648

उनमें से कक्षा-5 उत्तीर्ण	115	17.7%
कक्षा-8 उत्तीर्ण	21	3.2%
कक्षा-12 उत्तीर्ण	7	1.1%

ये सभी 7 पुरुष, जिन्होंने बारहवीं पास की शासकीय नौकरी में हैं – 5 सहायक शिक्षक, एक पटवारी और एक पुलिस की नौकरी कर रहा है।

जो बच्चे पाचवीं के बाद आगे पढ़ पाए उनके बारे में पूछताछ एवं जानकारी इकट्ठा करने पर पता चला कि ये सब बच्चे 1970 के बाद पाचवीं पास हुए हैं। 1970 के आस-पास करीब के एक गांव पहावाड़ी में एक छात्रावास खुला था। इनमें से अधिकांश बच्चे इस छात्रावास में रहकर आठवीं तक की पढ़ाई पूरी कर पाए। इन बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि देखी जाए तो इनके पालक तुलनात्मक रूप से आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं एवं खुद भी पढ़े लिखे हैं।

जैसा कि अब तक की जानकारी से साफ है कि बहुत से पांचवीं पास लोग आगे नहीं पढ़ पाए, परन्तु फिर भी उनका साक्षर होना अलग नज़र आता है। या तो वे 'उन्नत' खेती कर रहे हैं या फिर कोई तेंदू पत्ते का फड़ मुंशी है, कोई ट्रैक्टर का ड्राइवर है, कोई पास के शहर में साइकिल स्टोर खोले है या कहीं दूकान पर काम कर रहा है। इन साक्षरों के बच्चे भी बिना पढ़े लिखे पालकों की अपेक्षा स्कूल में कहीं ज़्यादा दर्ज होते है, ज़्यादा नियमित होते हैं, ज़्यादा पढ़ने लिखने में आगे हैं।

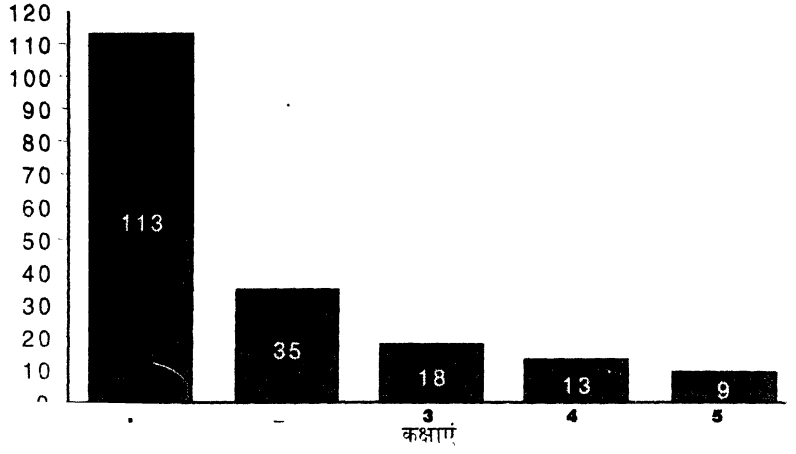

1910 से 1992 तक के 52 सालों मे पावरझंडा के स्कूल मे कुल 648 विद्यार्थी पहली कक्षा मे दर्ज हुए। उनमे से 113 लड़कियां थीं। उनमे से कितनी लडकियां कहां तक पहुंचीं, यह इस स्तभालेख मे दर्शाया गया है।

लड़कियों की शिक्षा

पावरझंडा के स्कूल मे बावन सालों के दौरान (1992 तक) दर्ज 648 बच्चों मे सिर्फ 113 यानी कि 17.5% ल
उनकी आगे की शिक्षा कुछ इस तरह से रही।

	दर्ज़ लडकियां	स्कूल छोड़ा	कक्षा का प्रतिशत	कुल का प्रतिशत
कक्षा-1	113	78	69.0	69.0
कक्षा-2	35	17	48.5	15.0
कक्षा-3	18	5	27.8	4.4
कक्षा-4	13	4	30.8	3.5
कक्षा-5	9	0	0	0

113 लड़कियां जो पहली कक्षा में दाखिल हु
9 यानी 8% पांचवी कक्षा पार कर पाईं। इनमें से भी माध्यमिक शिक्षा पूरी कर पाने वाली लड़की केवल एक ही है जो आंगनवाड़ी कार्यकर्ता है।

इन नौ बालिकाओं में से दो लड़कियां 1955 में पास हुई थीं और बाकी की सात वर्तमान दशक में। उनमें से भी छह तो पिछले तीन सालों में।

यह भी ध्यान देने की बात है कि इस गांव में पुरुष और महिलाएं संख्या में लगभग बराबर हैं। लेकिन शाला में लड़कियों की तुलना में पांच गुना ज़्यादा लड़के दर्ज़ हुए। पांचवीं पास करने वालों में लड़कियों का हिस्सा केवल 8% है।

– जिस साल देश आज़ाद हुआ उस वर्ष पावरझंडा के स्कूल में पहली लड़की ने दाखिला लिया जो कि एक शासकीय कर्मचारी (पटवारी) की बेटी थी। इसी साल पिताजी का स्थानांतरण हो जाने के कारण लड़की ने स्कूल से ट्रांसफर सर्टिफिकेट ले लिया।

– इसी साल एक शिक्षक की लड़की भी स्कूल में दर्ज़ हुई। उसने भी पिताजी की ट्रांसफर की वजह से चार साल बाद यह स्कूल छोड़ा।

– तीसरी लड़की 1951 में दाखिल हुई जो गांव में बाहर से आए एक व्यापारी की बेटी थी। अगले साल शाला से नाम कटवा दिया गया।

– 1954 में पहली बार इस गांव के मूल निवासी आदिवासी की लड़की दर्ज़ हुई पर अनुपस्थिति के कारण नाम खारिज कर दिया गया।

इस पढ़ाई के खर्च का एक अनुमान

पवारझंडा की इस शाला में औसतन दो शिक्षक रहे हैं सदैव। अग आज की कीमतों से गणना करें तो सालभर के खर्चे का हिसाब कुछ इस तरह बैठता है।

दो शिक्षकों का साल भर का वेतन	96,000
सत्तर बच्चों को चालीस रुपए की मुफ्त पाठ्य-पुस्तक	3,000
दस लड़कियों को पन्द्रह रुपए प्रति माह के हिसाब से छात्रवृत्ति	1,500

सत्तर बच्चों का मध्यान्ह भोजन 28,000

शाला भवन मरम्मत, स्कूल के लिए सामग्री इत्यादि 20,000

यानी हर साल डेढ़ लाख रुपए खर्च होते हैं इस स्कूल पर। औसतन हर साल 30-35 बच्चे पढ़ते हैं। तो हर छात्र पर प्रतिमाह लगभग 300 रुपए का खर्च होता है।

अगर इसको हम परिणाम के हिसाब से देखें तो पाएंगे कि डेढ़ लाख के खर्च पर इस शाला में हर साल 4-5 बच्चे पांचवीं का स्तर हासिल कर रहे हैं।

दूर-दराज़ के एक गांव के एक स्कूल की विस्तृत स्थिति आपके सामने है, सवाल शायद केवल खर्च का नहीं है। बहुत-सी और विश्लेषण की बातें उभरती हैं, अपने नज़रिए का भी असर पड़ेगा कि क्या दिखता है हमें इन आंकड़ों में और उसे हम कैसे समझते हैं। तो आप भी कीजिए कोशिश!

पलकों का नज़ारा और चूहे

फिलिप मॉरिसन

"एक लगातार बदलते हुए जटिल संसार से जूझकर किसी कदर कुछ समझ जुगाड़ लाने का नाम है विज्ञान। न ही यह कोई तार्किक क्रिया है। तार्किक नहीं, इसलिये कि इसमें ज़रूरी है जगत से जुगतबाज़ी, संसार को अदल-बदल कर यों-वों, इधर-उधर से देखने का कौशल। मेरा विश्वास है कि जब तक ऐसी जुगाड़ू समझ मेरे विज्ञान के पीछे न होगी, मैं जो कुछ सीखूंगा वह एक संभव मिथक से अधिक कुछ न होगा"

मैंने पहली दफे अपनी नज़रें माइक्रोस्कोप में दौड़ाई थीं। उस वक्त मैं छठवीं-सातवीं कक्षा के अन्य साथियों की कतार में था – एक उम्मीद भरे इन्तज़ार में। बहुत बड़ी चीज़ थी वह – एक असल माइक्रोस्कोप। अध्यापिका ने मुझे कुल मिलाकर यही कोई पंद्रह सेकंड का समय दिया था – माइक्रोस्कोप में से उस 'कुछ' को निहारने के लिए जिसे उसी ने तैयार किया था। और 40 लोग थे इन्तज़ार में; 15 सेकंड गुने 40 के मायने होता है दस मिनट। माइक्रोस्कोप में से देखने के लिए इससे ज़्यादा समय देने को वह तैयार नहीं थी। मैंने जो निहारा वह था अपनी ही आंखों की पलकों का एक अच्छा खासा नज़ारा। माइक्रोस्कोप से देख चुकने के बाद मुझसे यह उम्मीद थी कि मैं सूक्ष्मदर्शीय चित्रों में यकीन करूं। निश्चय ही मैं एक अच्छा विद्यार्थी था और अध्यापिका जो भी मुझे बताती,

मैं वह सब सीख लेता था। लेकिन यह बात मेरे पल्ले ही नहीं पड़ रही थी कि भला माइक्रोस्कोप से लोग अपनी ही पलकों को छोड़कर और कुछ कैसे खोज पाते हैं। मेरा यकीन है कि यह मानव-जाति का एक साझा अनुभव है कि आपको अक्सर माइक्रोस्कोप में अपनी पलकें ही दिखती हैं।

अहसास और सूक्ष्मदर्शी

मेरा इस बात से कोई झगड़ा नहीं कि आधुनिक विज्ञान के लिए दुनिया का सूक्ष्मदर्शीय अवलोकन अत्यन्त ज़रूरी है। बिना किसी झिझक के यह कहा जा सकता है कि यदि आधुनिक सूक्ष्मदर्शी न होते तो आधुनिक विज्ञान ही न होता। मेरा आशय किसी एक विशेष उपलब्धि से नहीं है, बल्कि साधारण नज़रों से परे सूक्ष्म पैमानों पर मौजूद दुनिया के ताने बाने के अहसास से है। वह अहसास जो किसी भी सस्ते-से माइक्रोस्कोप में से ध्यान से देखने से बन सकता है। लेकिन यह नहीं कि आप अपनी ही पलकों को पंद्रह सेकंड तक लगातार ताकते रहें, फिर चाहे वह उम्दा-से-उम्दा सूक्ष्मदर्शी ही क्यों न हो। इस अहसास के लिए विभिन्न कोशिकाओं के नाम जान लेने से काम नहीं चलेगा; न ही बात इस चर्चा से बनेगी कि अभिरंजक किस तरह माइटोकोंड्रिया या गॉल्गी-तंत्र को उभार कर लाता है। मुद्दा यह नहीं। मुद्दा तो यह है कि एक मौका मिल सके – मौका यह ताड़ने का कि यह उपकरण जो है, उसकी अपनी ढब है, खासियतें हैं; मौका उसे इस तरफ से, उस तरफ से देखने का।

यदि हम दस साल के बच्चों को ऐसा करने का मौका दें तो वे इसे खूब अच्छे से करेंगे। मेरी उम्मीद और राय है कि इससे बहुत बड़ा फर्क पड़ेगा। फर्क इस तरह का नहीं जिस तरह से वे किताबों में इस बात के जवाब सीखते हैं कि सूक्ष्मदर्शीय चीज़ें असल में हैं क्या, और किस तरह से उन्हें दर्शाया जाये। फर्क पड़ेगा उनकी निष्ठा में, और उनके आने वाले बौद्धिक जीवन में इस तरह के विचारों के कारण मिलने वाले फल में। अहम मुद्दा यही है। इस बात का महत्व जानने के लिए कि माइक्रोस्कोप हमें चीज़ों को बड़ा करके एक विलक्षण-सी रोशनी में दिखाता है, हमारे लिए माइक्रोस्कोप में से झांकना कतई ज़रूरी नहीं। लेकिन मेरे ख्याल से यह अहसास पुख्ता तो तभी बनता है जब हम खुद

माइक्रोस्कोप में से झांकें। तब यह एक अजनबी चीज़ नहीं रह जाता – जाना पहचाना बन जाता है।

सत्रहवीं सदी में आधुनिक विज्ञान की नींव डालने वाले महान लोगों के काम पर एक नज़र डालकर हम यह जान सकते हैं। मैं इनमें से एक का हवाला दूंगा – रॉबर्ट हुक का – सत्रहवीं सदी में हुआ लंदन का वह अजब मेधावी। रॉयल सोसायटी की मीटिंग के लिए, हर महीने वह माइक्रोस्कोप के दो नए प्रदर्शन करता और वे अद्भुत होते। कहें तो उनमें से लगभग सारे, आज के ज़माने में, नोबेल पुरस्कार पाने के हकदार तो होते ही। पर उस समय के लोगों के लिए यह कोई विशेष बात नहीं थी। आखिरकार इन प्रदर्शनों के लिये उसे पैसे जो मिलते थे। यह उसका काम ही तो ठहरा!

उसकी महान पुस्तक 'माइक्रोग्राफिया', जनप्रिय भाषा में सूक्ष्मदर्शीय संसार की यूरोप में हुई पहली पड़ताल थी। वह कहता है इस काम के लिए कुल मिलाकर चाहिए ही क्या – एक माइक्रोस्कोप, "एक भरोसेमंद आंख, और चीज़ें जैसी दिखती हैं उनका हूबहू ब्यौरा रखने के लिए एक विश्वसनीय हाथ।" वो बताता है कि यह कैसे करना है। कहता है, "सिर्फ एक रोशनी में न देख, रोशनी को यहां-वहां बिखेरो; किसी एक कोण से देखो फिर दूसरे से। जल्द ही आप वास्तविकता को फिर से निर्मित कर सकेंगे।"

ध्यान रहे कि पाठ्यपुस्तकों द्वारा प्रदत्त संसार नहीं है यह। पाठ्यपुस्तकें कुछ ऐसा अहसास छोड़ती हैं मानो सूक्ष्मदर्शीय दृश्य एक नियत तथ्य हो। देखा जाए तो यह पहले ही से निर्धारित तथ्य नहीं। जब तक पाठ्यपुस्तक इस्तेमाल में है तब तक फलां-फलां पेज पर उसका चित्र हाज़िर है - मेरे या किसी के भी सीखने के

लिए। लेकिन मैं अगर उस चित्रांकन को खुद बनाना चाहूं, हासिल साज़ो-सामान से अपने लिए उसे एक बार फिर से अवतरित करना चाहूं, जो कि मेरे लिए उतना ही दुःसाध्य होगा जितना कि उन विशेषज्ञों के लिए था, तो नज़ारा कुछ और ही होगा। सही रोशनी पाने के लिए उन विशेषज्ञों ने क्या-क्या पापड़ न बेले होंगे; अव्वल तो उस वस्तु को ही सही-सही पाने में ही काफी दिक्कतें आई होंगी; सही कोशिका को सही स्थिति में पाना ज़रूरी था – यह नहीं हो कि एक के ऊपर दूसरी कोशिका आ जाए, यह भी नहीं कि स्लाइड पर धूल का एक भी नुक्ता आ जाए। स्लाइड पर जब देखें तब धूल चली आती है कहीं से, जबकि बहुत-सी चीज़ें जो दिखनी चाहिए, कन्नी काट जाती हैं। सिद्धांत को चाहिए एकदम दुरुस्त हालात। लेकिन मुद्दा है: ये सही हालात यानी समुचित परिस्थितियां आखिर हैं क्या?

विज्ञान एक जुगाड़

थोड़े में, यह कि निर्धारित तथ्यों के ज़रिए बात-बहस करना तो बहुत आसान है, लेकिन मूलतः विज्ञान तो पूर्व-निर्धारित है नहीं। एक लगातार बदलते हुए जटिल संसार से जूझकर किसी कदर कुछ समझ जुगाड़ लाने का नाम है विज्ञान। न ही यह कोई तार्किक क्रिया है। तार्किक नहीं, इसलिए कि इसमें ज़रूरी है जगत से जुगत-बाज़ी, संसार को अदल-बदल कर यों-वों, इधर-उधर से देखने का कौशल। मेरा विश्वास है कि जब तक ऐसी जुगाड़ू समझ मेरे विज्ञान के पीछे न होगी, मैं जो कुछ सीखूंगा वह एक संभव मिथक से अधिक कुछ न होगा। शायद यह अरस्तूवादी ज्ञान जैसा ही कुछ-कुछ होगा, लेकिन उससे अधिक कुछ नहीं, ऐसा मेरा सोच है। वास्तव में तो यह और भी कम तार्किक होगा क्योंकि अरस्तू ने तो कम-से-कम हर नुक्ते पर उठ रही आपत्ति का अंदेशा लगाकर अपने तर्क सोचे थे, प्रस्तुत किए थे। इन दिनों ऐसे तर्क पाठ्यपुस्तकों के रास्ते हमारी समझ में बेधड़क प्रवेश करते हैं। इसलिए मेरा यह स्पष्ट मत है कि विज्ञान में हमें ऐसी शिक्षा की आवभगत करना चाहिए जो प्रमाण की प्रकृति पर अधिक बल देती हो। प्रमाण की प्रकृति केवल तार्किक नहीं है; यह मुख्यतः प्रयोगात्मक है। लेकिन इसके मायने यह नहीं कि तर्क को प्रयोग से अलग कर दिया जाए। जो बात तर्क से साबित होती है उसे प्रयोग के आधार पर सिद्ध होने वाली बात से तो जुदा कर ही नहीं सकते। कुल जमा मसला यह है कि पाठ्यपुस्तकों में अवधारणाएं जिस रूप में प्रस्तुत की जाती हैं उन्हें उसी रूप में प्रयोगों व अवलोकनों के ज़रिए शत-प्रतिशत हासिल नहीं किया जा सकता। हां, हो

सकता है कि 70 फीसदी बार हमारे अवलोकन उसी के इर्द-गिर्द मंडराएं जो किताबों में सिद्धांत रूप में दिया गया है। बाकी तीस फीसदी? उसे हम प्रयोगात्मक त्रुटि मान कर अपने सिद्धांतरूपी जवाब की सुरक्षा कर सकते हैं, बशर्ते जवाब हमें पता हों कि उन तीस फीसदी अलग परिणामों के पीछे कारण क्या हैं।

मैं स्वयं उस प्रसिद्ध प्रयोग में शामिल था जिससे बहुत-से स्कूली बच्चे वाकिफ हैं। एक तश्तरी के बीचोंबीच जलती हुई मोमबत्ती खड़ी कर उस तश्तरी में पानी भरा जाता है। फिर संभल-संभल कर उस जलती हुई शमा को एक गिलास या चौड़े मुंह वाली बोतल से ढंक दिया जाता है। कुछ देर बाद गिलास के अन्दर पानी का स्तर ऊपर उठने लगता है। आयतन में हुए इस बदलाव को मापा जाता है और पाया जाता है कि यह 15-20 प्रतिशत है।

मोमबत्ती, ऑक्सीजन और चूहे

इस प्रयोग के संदर्भ में कहा यह जाता है कि गिलास के अन्दर की हवा की ऑक्सीजन को पूरी तरह से खत्म करने के पश्चात मोमबत्ती बुझ जाती है। अगर पदार्थ की संरचना के बारे में मात्रात्मक रूप में कुछ कहने को कहा जाए तो ज़्यादातर शिक्षित लोगों को दो ही बातें पक्के तौर पर मालूम होती हैं – कि पानी की संरचना है H_2O और हवा में ऑक्सीजन की मात्रा 20 प्रतिशत होती है। यदि ऑक्सीजन के अन्य गुणों व प्रतिशत के संदर्भ में हम कुछ और नहीं भी जानें तो भी हमें पता होता है कि हवा में 20 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। यही पढ़ाया जाता है, और यहां तक यह है भी सच। इसलिए यह तथ्य कई अन्य पढ़ाए जाने वाले तथ्यों के मुकाबले कहीं ज़्यादा बेहतर स्थिति में है! पर यह तथ्य (हवा में 20% ऑक्सीजन) ऊपर के प्रयोग द्वारा कतई प्रमाणित नहीं होता!

एक वैज्ञानिक तथ्य और उससे जांचने के लिए किए जा रहे प्रयोग के बीच की इस विसंगति को हमने कई प्रयोगों के ज़रिए दर्शाया। पर इसे प्रकाशित करने पर बहुत से लोगों ने आपत्ति ज़ाहिर की। आखिर कक्षाओं में 100 सालों से चले आ रहे एक प्रायोगिक प्रदर्शन को झुठलाया कैसे जा सकता है? परन्तु वे गलत थे। हालांकि मुझे यह कहते हुए दुख होता है, लेकिन हकीकत यही है कि वे गलत थे। पानी का चढ़ना सिर्फ ऑक्सीजन के दहन पर ही निर्भर नहीं करता। पहली हकीकत तो यही है कि जब मोमबत्ती बुझ जाती है तब भी वहां ऑक्सीजन आधी बची पड़ी होती है। वो इसलिए क्योंकि यहां दरअसल दहन की दर मायने रखती है। हवा में जब

आठ फीसदी ऑक्सीजन रह जाती है तो अक्सर मोमबती की लौ बुझ जाती है। बहरहाल पानी फिर भी 20 फीसदी ही चढ़ता है। क्यों? क्योंकि पानी के स्तर का चढ़ना कई-एक बातों पर निर्भर करता है जिसमें से प्रमुख असर है हवा के गर्म होकर फैलने का।

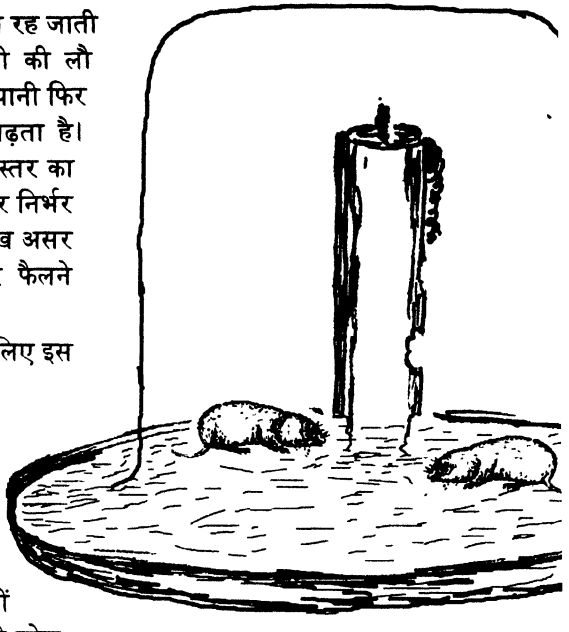

प्राथमिक शिक्षा के लिए इस प्रयोग पर काम करने वाली टीम ने उस मर्तबान में, जिसमें जलती हुई मोमबत्ती बुझ चुकी थी, सफेद चूहे घुसा दिए। चूहों को उसमें कोई परेशानी नहीं हुई और वे मस्ती से बुझे मोम को कुतरने में लगे रहे। अब शास्त्रीय सिद्धांतों के हिसाब से तो, मैं समझता हूं, यह सिद्ध होता है कि चूहे ऑक्सीजन के बिना भी ज़िंदा रह सकते हैं।

इससे मिलने वाली सीख एकदम साफ है। लोगों ने यह प्रयोग इसलिए नहीं किया कि यह एक खरा प्रयोग था, बल्कि इसलिए कि उन्हें यह करना होता था। एक तरफ ये पेचीदगियां हैं, और वैसे कितना आसान-सा लगता है यह प्रयोग। लेकिन जिस व्यक्ति ने आज से सौ साल पहले यह प्रयोग खोजा (मैं नहीं जानता कि वह कौन था), उसने शायद बहुत से गैसों से संबंधित प्रयोगों के आधार पर किया होगा इसे। इसे करते हुए उसने शायद उन सब बातों के बारे में सोचा होगा जो इस प्रयोग को सही ढंग से करने के लिए ज़रूरी हैं। परन्तु समय के साथ उन बारीकियों और सावधानियों के गुम हो जाने से उस प्रयोग का कोई अर्थ ही नहीं बचा।

प्रयोग करने वाले किसी शख्स ने अपने आप से यह सवाल नहीं किया कि क्या सारी ऑक्सीजन खप गई? यह जानने के लिए क्या करना होगा? जैसे ही आप यह जानने की कोशिश करते हैं सबसे पहली बात यही समझ

में आती है कि सारी ऑक्सीजन खर्च नहीं हुई। दूसरे, आप और किस-किस तरह से प्रयोग करके देख सकते हो? यदि यह प्रयोग चिकनी मिट्टी की सतह पर किया जाए तो पानी मामूली-सा ही चढ़ता है क्योंकि चिकनी मिट्टी अपने ऊपर औंधे रखे बर्तन को अच्छी तरह से बंद कर देती है। कुल जमा बात यह है कि अगर हम अपने अवलोकनों के प्रति ईमानदार हैं तो जानेंगे कि इस छोटे आसान-से तजुर्बे को समझना भी काफी टेढ़ी खीर है। हां, अपनी स्मृति पर ज़रूर हम यह बोझा लाद सकते हैं कि जब इम्तहान हो और सवाल हो कि, "हवा में . . . प्रतिशत ऑक्सीजन होती है।(2, 20, 100 ?)" तो झट से बीच वाले आंकड़े पर टिक लगा दें यानी जवाब एकदम सही और आप चल दिए हार्वर्ड जैसी किसी बढ़िया-सी यूनिवर्सिटी की तरफ। यह उपहास ज़रूर है लेकिन कहने का मकसद सिर्फ इतना है कि सच में कोई भी प्रयोग इतना आसान नहीं होता। बहुत ही मुश्किल और जटिल होता है किसी भी प्रयोग को ठीक से करना।

जब मैं स्कूल में था तो दर्शन-शास्त्रियों को कहते सुनता कि प्रयोग और सिद्धांत का मुकाबला हो तो पायेंगे कि प्रयोग का पलड़ा ही भारी रहता है। मैं एक सामान्य सिद्धांत के रूप में इसमें विश्वास रखता हूं। इसमें विश्वास न करना विश्वासघात होगा। लेकिन मैं इस सच्चाई से भी वाकिफ हूं कि भौतिकी ही नहीं, तमाम अन्य विषयों में भी ऐसे प्रयोग सदैव मिल जाते हैं जो संबंधित सिद्धांत पर सवाल खड़े कर देते हैं, पर फिर भी सिद्धांत खरा उतरता है। अब ऐसा क्यों? इसलिए कि हमने प्रयोग का कबाड़ा कर दिया। प्रयोग ठीक से क्यों नहीं हुआ? क्योंकि हम तकरीबन हर प्रयोग में कुछ-न-कुछ गड़बड़ कर देते हैं। प्रयोग जमाना, उसे ठीक से करना बड़ा ही कठिन कार्य है। मोमबत्ती वाला प्रयोग तो इस तरह के प्रयोग की ओर एक इशारा भर है। दुनिया हमारे सामने एक सुलझी-सुलझाई कड़ी की तरह पेश नहीं आती: बल्कि वह एक ऐसी वास्तविक दुनिया की भांति मिलती है जिसमें शॉर्ट-सर्किट होते हैं, हवा दरारों से अन्दर घुस आती है, मोमबत्तियां ऐसी कि फकत आधी ऑक्सीजन को ही जला पाएं, वगैरह, वगैरह। यानी हालात ऐसे जो हमारी शर्तों में तो थे ही नहीं। तो? हम चले चलते हैं और जारी रखते हैं एक प्रयोग के साथ अपनी मशक्कत, बार-बार करते हैं उसे। तब तक कि वह वाकई अच्छे से न हो जाए, तब तक कि पूरी तरह से उसका विश्लेषण न हो जाए। प्रयोगों में इस कदर की भागीदारी मोमबत्ती वाले या माइक्रोस्कोपीय अवलोकन जैसे

सादे प्रयोगों में तो सुनिश्चित की जा सकती है, लेकिन यह सब किताबों से कतई नहीं हो सकता, किसी भी पीढ़ी के लिए नहीं। यहां तक कि मोमबत्ती वाले तजुर्बे को लेकर जो कुछ मैंने यहां कहा है उसे भी किताबों में लिखा तो जा सकता है, और फिर भी वह बेअसर साबित हो सकता है। मुझे पता नहीं किसी भी बात का पूरी तरह से असर पड़ सकता है या नहीं, लेकिन इतना तो मैं काफी विश्वास के साथ कह सकता हूं कि अगर बात बन सकती है तो वह किसी भी चीज़ में रूबरू भागीदारी से ही संभव है।

फिलिप मॉरिसन – जन्म (1915) प्रख्यात भौतिकशास्त्री। अमेरिका से प्रकाशित विज्ञान पत्रिका 'साइंटिफिक अमेरिकन' में नियमित स्तंभ लिखते हैं।

प्रसिद्ध किताब 'पावर्स ऑफ 10' के लेखक; इस किताब पर बनी फिल्म भी काफी पसंद की गई। यह लेख 'साइंस एंड कन्टेम्पररी सोसायटी' नाम की किताब में उनके द्वारा लिखे गए लेख *'साइंस, एजुकेशन एंड द फ्यूचर ऑफ मेनकाइंड'* का एक हिस्सा है।

यह-किताब पाएको पब्लिशिंग हाउस, एरनाकुलम ने 1967 में प्रकाशित की थी।

मूल लेख अंग्रेजी में; **अनुवाद: मनोहर नोतानी** – अनुवाद के काम में स्वतंत्र रूप से सक्रिय, भोपाल में रहते हैं।

कब खत्म हो रही है आपकी सदस्यता

संदर्भ के लिफाफे पर लगी पते की स्लिप पर गौर करें। इसमें आपके पते के अलावा एक और जानकारी होती है। जो इस तरह लिखी होती है -

21st Issue (last issue)

इसका मतलब है कि आपकी सदस्यता 21वें अंक में समाप्त होने वाली है। इसलिए 20 वां अंक पाते ही आप नया सदस्यता शुल्क भेज दें। ताकि आगे के अंक आपको लगातार मिलते रहें।

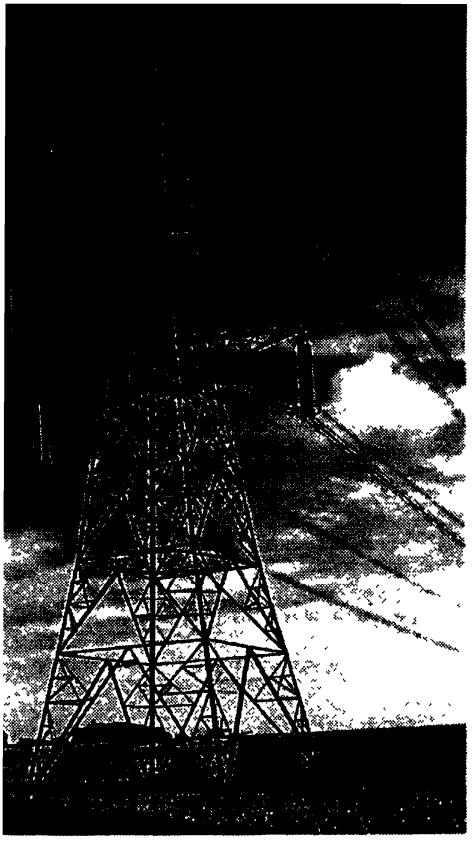

बिजली के झटके

अजय शर्मा

हर किसी को अपने जीवन में कई किस्म के झटके झेलने पड़ते हैं। इनमें अगर मैं बिजली के झटकों को भी शामिल करूं तो मुमकिन है आप इंकार न कर पाएं। आखिर कभी-न-कभी तो बिजली का झटका खाकर आपके होश भी फाख्ता हुए होंगे। इसलिए हम जब भी विद्युत की अवधारणा को पढ़ते-पढ़ाते हैं तो शरीर पर बिजली के प्रभावों को समझने-बूझने की जिज्ञासा हमारे ज़हन में सहज ही उठती है। पर किन्हीं कारणों से अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षक इस जिज्ञासा को एक-दो चलताऊ वाक्यों से संतुष्ट करने की आधी-अधूरी कोशिश करके आगे बढ़ जाते

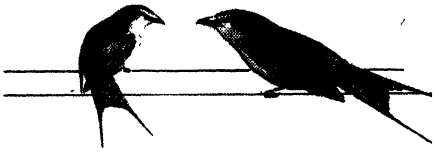

यूं तो ये दोनों पंछी अलग-अलग तारों पर बैठे हैं इसलिए महफूज़ हैं लेकिन ये जो चोंच लड़ाने की सोच रहे हैं वह ज़रूर जान लेवा हो सकती है।

हैं। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है, शायद एक विवाद का मुद्दा हो सकता है, पर इतना तय है कि विद्युत की अवधारणा को पढ़ते-पढ़ाते वक्त इस मुद्दे पर चर्चा विद्युत की विषय वस्तु को और अधिक रुचिकर और सार्थक बनाने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सावधान!! 440 . . .

बिजली के झटकों से सावधान करने के लिए ट्रांसफॉर्मर, जनरेटर या बिजली के खंभों इत्यादि पर टंगे बोर्डों में अक्सर सिर्फ वोल्ट का ही ज़िक्र होता है, जैसे 'सावधान! 440 वोल्ट', 'खतरा! 1100 वोल्ट' आदि। इसलिए अक्सर लोग मान बैठते हैं कि बिजली के झटके का एकमात्र कारण विद्युत वोल्टेज है। पर यह पूर्णतः सच नहीं है। आपको बिजली का झटका खिलाने में विद्युत वोल्टेज का हाथ ज़रूर होता है, लेकिन सिर्फ एक ज़रूरी शर्त बतौर। दरअसल, हमारे शरीर को बिजली का झटका तभी लगता है जब करंट यानी विद्युत धारा का हमारे शरीर से प्रवाह होने लगता है। विद्युत धारा हमारे शरीर से प्रवाह कर पाए, इसके लिए दो परिस्थितियों का मौजूद होना ज़रूरी है। पहली, विद्युत धारा को हमारे शरीर के ज़रिए बहने के लिए एक संपूर्ण विद्युत परिपथ मुहैया होना चाहिए।

दूसरे, शरीर के जिन दो बिंदुओं के बीच करंट को बहना हो, उनके वोल्टेज (विद्युत विभवों) में अंतर होना चाहिए।*

आपने चिड़ियों को मज़े से बिजली के तारों पर बैठे देखकर यह ज़रूर सोचा होगा कि भला, इनको बिजली का झटका क्यों नहीं लगता?

इसका श्रेय जाता है इन तारों को जिनके किन्हीं भी दो नज़दीकी बिंदुओं का विद्युत विभव (वोल्टेज) लगभग एक समान होता है। इस कारण तार पर बैठी किसी भी चिड़िया के दोनों पंजों (जिनके ज़रिए ही करंट बह सकता था) के वोल्टेज में भी कोई अंतर नहीं

** दो बिंदुओं के बीच विद्युत आवेश के प्रवाह को विद्युत धारा (करंट) कहते हैं। यह प्रवाह तभी होता है जब दोनों बिंदुओं के विद्युत विभवों (वोल्टेज) में फर्क हो। किसी बिंदु की विद्युत विभव ऊर्जा प्रति आवेश को उसका विद्युत विभव कहा जाता है। विद्युत विभव को वोल्ट और करंट को एम्पीयर नामक इकाइयों में नापा जाता है।*

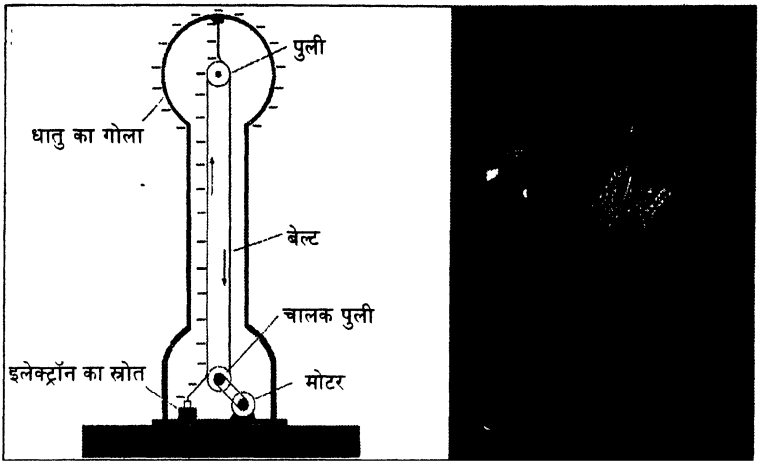

चित्र में 'वेन डी ग्राफ' जनरेटर को छूता हुआ बच्चा दिखाया गया है। बच्चे के बाल अजीब तरह से एकदम खड़े है। इसका कारण यह है कि गोले को छूने से बच्चे का शरीर आवेशित हो गया है और बाल भी। बालों में समान आवेश आ जाने के कारण वे एक-दूसरे को धकेलने की कोशिश करते हैं। इसी वजह से वे सेही के कांटों की तरह खड़े हो गए हैं।

साथ दिए चित्र में 'वेन डी ग्राफ' के अंदरूनी हिस्से दिखाए गए हैं। इसमें निचले हिस्से से लगातार इलेक्ट्रॉन उत्सर्जित हो रहे हैं। इन इलेक्ट्रॉनों को एक बेल्ट की मदद से ऊपर धातु के गोले तक लाया जाता है जिससे गोला लगातार आवेशित होता रहता है।

होता। नतीजतन चिड़ियों के शरीर में विद्युत धारा का प्रवाह हो नहीं पाता और बिजली का झटका नहीं लगता। आप भी अगर हज़ारों वोल्ट के तार को हाथों से पकड़कर लटक जाएं तो सलामत रहेंगे। हां, लेकिन भूलकर भी अगर आपके शरीर का कोई भी अंग किसी दूसरे तार या धरती (जिसका वोल्टेज पहले तार से काफी भिन्न हो) को छू जाए तो बस खैर नहीं ....। वैसे चमगादड़ों या कुछ और पक्षियों का ऐसा हश्र भी कभी-कभार देखने को मिल जाता है।

अनोखा जनरेटर. . .

कई संपन्न देशों के स्कूलों की प्रयोगशालाओं में अक्सर 'वेन डी ग्राफ' जनरेटर नामक उपकरण उपलब्ध रहता है। इस उपकरण के ज़रिए धातु की एक गेंद पर इतना विद्युत आवेश इकट्ठा किया जा सकता है कि उस गेंद का विद्युत विभव हज़ारों वोल्ट

हो जाए। क्या आप किसी ऐसी गेंद को छूना चाहेंगे? शायद यह जानकर आपके होंसले बुलंद हों कि इन बच्चों को खासा मज़ा आता है इन आवेशित गेंदों को छूकर खुद आवेशित हो जाने में। हो सकता है आप सोचें कि इनको बिजली का करारा झटका क्यों नहीं लगता?

यह इसलिए कि गेंद को छूने से पहले ही सुनिश्चित कर लिया जाता है कि इनका कोई भी अंग धरती के संपर्क में न हो। और साथ ही बच्चों को यह भी सख्त हिदायत होती है कि गेंद को एक ही हाथ से छूएं। लिहाज़ा इनके शरीर के ज़रिए कोई भी ऐसा संपूर्ण विद्युत परिपथ नहीं बन पाता जिसमें विद्युत धारा का प्रवाह हो सके। यही कारण है कि बच्चें हज़ारों वोल्ट तक आवेशित होने के बाद भी सुरक्षित रहते हैं। बिजली का काम करने वालों को अक्सर सलाह दी जाती है कि काम करते वक्त वे एक हाथ अपनी जेब में रखें। समझ गए न, क्यों?

कितना करंट , कितना प्रतिरोध

अब फर्ज़ कीजिए कि आप झटका लगने की सभी ज़रूरी शर्तों को पूरी करते हुए जाने-अनजाने में 250 वोल्ट के नंगे तार को छू देते हैं। यकीनन ऐसे में आपके शरीर से करंट बहेगा, पर कितना? यह सवाल अहम है क्योंकि करंट की मात्रा* ही तय करेगी कि आप बहते करंट से बेखबर खड़े रहेंगे या गश खाकर चित हो जाएंगे। और करंट की मात्रा तय होती है आपके शरीर के विद्युत प्रतिरोध से। हमारे शरीर की त्वचा विद्युत प्रवाह में खासा प्रतिरोध डालती है, पर यह प्रतिरोध कितना होगा यह शरीर के हालात से तय होता है।

परिस्थिति अनुसार मानव शरीर का विद्युत प्रतिरोध 100 ओह्म से बीस लाख ओह्म तक हो सकता है। मसलन अगर आप सूखी अंगुलियों से नंगे तारों को छूते हैं तो आपके शरीर का प्रतिरोध लगभग दस लाख ओह्म होगा, और अगर नमकीन पानी से भीगे हाथों से आप तार पकड़े हुए हैं तो आपका विद्युत प्रतिरोध घटकर 700 ओह्म तक पहुंच सकता है। यह इसलिए कि साधारण पानी *(साधारण पानी से आशय हमारे आसपास मिलने वाले पानी से है – जैसे नदी, नाले, ट्यूब वेल वगैरह से मिलने वाला पानी; जो आसुत जल नहीं होता।)* विद्युत का अच्छा चालक

* *विद्युत प्रतिरोध का मापन ओह्म (Ω) नामक इकाइयों में होता है, तथा विद्युत प्रवाह, विद्युत विभव और प्रतिरोध के बीच इस तरह का संबंध होता है:*
करंट = वोल्टेज/विद्युत प्रतिरोध

होता है और नमक घोलने से पानी की चालकता और भी अधिक हो जाती है। यही वजह है कि हमारे शरीर का कोई भी आंतरिक अंग विद्युत प्रवाह में ज़्यादा प्रतिरोध पैदा नहीं करता जबकि त्वचा की सूखी ऊपरी परतों का प्रतिरोध काफी अधिक होता है। अब चूंकि विद्युत धारा प्रतिरोध के विपरीत अनुपात में होती है, जितना कम प्रतिरोध होता है करंट की मात्रा उतनी ही अधिक हो जाती है। मसलन, अगर आपकी त्वचा सूखी है तो 12 वोल्ट के नंगे तार को छूने पर आपको कुछ भी महसूस न होगा। पर इसी तार को अगर गीले हाथों से छूने की जुर्रत करें तो अच्छा-खासा झटका खा बैठेंगे। इसलिए बाथरूम में ऐसे एहतियात बरते जाते हैं कि भूल से भी आपका शरीर किसी नंगे चालू तार के सम्पर्क में न आए।

पसीना छूटने से भी हमारे शरीर का विद्युत प्रतिरोध घट जाता है। बिजली का झटका खाने से कई बार शरीर पसीने से तर हो जाता है। तब स्वाभाविक है कि खतरा और भी अधिक बढ़ जाता है। वैसे अपनी इस क्षमता के कारण आप एक और किस्म की मुसीबत में फंस सकते हैं। वह तब जब आप झूठ बोलने पर आमादा हों और आपका लाइ-डिटेक्टर (Lie detector) द्वारा परीक्षण करवा लिया जाए। अक्सर ऐसा देखा गया है कि जो लोग झूठ बोलने में अनाड़ी होते हैं, झूठ बोलते वक्त उनकी हथेलियां पसीने से नम हो जाती हैं। खासतौर पर तब जब झूठ पकड़े जाने पर वे मुसीबत में फंस सकते हैं। लाइ-डिटेक्टर एक ऐसा उपकरण है जिसके ज़रिए पसीना छूटने के कारण हथेलियों के विद्युत प्रतिरोध में आए बदलाव को बड़ी ही आसानी से पढ़ा जा सकता है। इसकी मदद से पुलिस अनाड़ियों का झूठ पकड़ लेती है।

तीन किस्म के प्रभाव

अब देखते हैं कि करंट बहने से हमारा शरीर किस तरह प्रभावित होता है। करंट के मानव शरीर पर तीन किस्म के प्रभाव दर्ज किए गए हैं – विद्युत अपघटन (Electrolysis), गर्मी (Heating) और तंत्रिकाओं का उद्दीपन (Stimulation of nerves)। ये तीनों प्रभाव करंट की मात्रा और उसकी आवृति पर निर्भर करते हैं।

विद्युत अपघटन एक गौण प्रभाव है जिसमें शरीर में कमज़ोर विद्युत अपघटनी करंट* का प्रवाह होने लगता है। मिसाल के तौर पर अगर 100 μA

* *इस करंट से हमारा तात्पर्य आयन नामक आवेशित कणों के प्रवाह से है। तारों में बहने वाला करंट इलेक्ट्रॉनों के प्रवाह के कारण होता है, जो कि दूसरे किस्म के कण होते हैं।*

(माइक्रो एम्पीयर) का करंट कुछ मिनटों के लिए हमारी त्वचा से प्रवाहित किया जाए तो यह प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रभाव के कारण नंगे तार छूने की जगह पर छोटा-सा घाव हो जाता है, जिसे ठीक होने में काफी समय लग सकता है। अगर शरीर को दिए जाने वाले करंट की आवृति 0.1 Hz (हट्र्ज़)* से ज़्यादा है तो शरीर पर इस किस्म का प्रभाव नहीं होता। चूंकि हमारे घरों में बहने वाले करंट की आवृति 50 Hz होती है, इसलिए इस प्रभाव से हम बचे रहते हैं।

दूसरे किस्म का प्रभाव शरीर के किसी खास हिस्से को उष्मा पहुंचाने से संबंधित है। अगर 100 KHz से अधिक आवृति का लगभग एक एम्पीयर करंट शरीर से प्रवाहित कराया जाए, तो जिस हिस्से से करंट बह रहा है उसे काफी उष्मा मिलती है। इससे अधिक मात्रा का करंट प्रभावित स्थल को जला देगा, चाहे आवृति कितनी ही हो। डॉक्टर इस प्रभाव का उपयोग 'डायथर्मी' नामक विधि में करते हैं जिसके ज़रिए ऑपरेशनों में बारीक चीर-फाड़ की जा सकती है, और

करंट की मात्रा का शरीर पर प्रभाव

ए. सी. करंट (50 Hz)	प्रभाव
लगभग 1 mA	हल्का-सा अहसास
10 mA तक	हल्की-सी झनझनाहट
लगभग 15 mA	मांस पेशियों का खिंच जाना, तार से चिपक जाना
15 से 100 mA तक	दर्द, बेहोशी की संभावना, सांस लेने में दिक्कत
100 से 500 mA तक	सांस रुकने की संभावना, हृदय का बेतरतीब धड़कना (Ventricular Fibrillation), मृत्यु की संभावना
500 mA से ऊपर	मृत्यु

शरीर पर करंट की मात्रा का प्रभाव व्यक्ति विशेष पर भी निर्भर करता है।

** हट्र्ज़ तरंग की आवृति नापने की इकाई है जिसे Cycle/Second में नापा जाता है।*

अंदरूनी अंगों में रक्त के थक्के जमाने (Coagulation) में भी कराया जा सकता है।

करंट के तीसरे प्रभाव से हम सब परिचित हैं। जी हां, वो है झटका लगना। करंट प्रवाह द्वारा तंत्रिकाओं या मांस-पेशियों के कृत्रिम रूप से उद्दीपन (Stimulation) के कारण हमें झटका लगता है। बिजली के इस झटके से हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह कई बातों पर निर्भर करता है। इनमें प्रमुख है करंट की मात्रा। ज़ाहिर है करंट की मात्रा जितनी अधिक होगी, असर उतने ही खतरनाक होंगे। अलग-अलग मात्राओं के करंट के प्रभाव तालिका में दर्शाए गए हैं।

चिपकने की वजह

करंट के कारण नंगे तार से 'चिपकने' के दो कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि आप अपनी मांस-पेशियों पर से नियंत्रण खो बैठते हैं। इस कारण अगर आप तार के संपर्क में हैं तो उससे अपने आप को अलग नहीं कर सकते।

दूसरा कारण, करंट के कारण मांस-पेशियों में खिंचाव पैदा होना है।

मिसाल के तौर पर, अगर तार आपकी हथेली से छुआ है तो पेशियों के खिंचाव के कारण आपकी मुठ्ठी बंध जाएगी और तार उसकी गिरफ्त में आ जाएगा। ऐसे में तार को आपसे अलग करना काफी कठिन हो जाता है।

बिजली के झटके से सांस लेने में कठिनाई इसलिए आती है क्योंकि अगर करंट पर्याप्त मात्रा का है तो वह तंत्रिकाओं को प्रभावित करने के अलावा उनके तंत्रिका केन्द्र (Nerve Centre) को भी असंतुलित कर देता है जिसके द्वारा हमारा दिमाग श्वसन को नियंत्रित करता है। इसलिए झटका खाए व्यक्ति को बिजली के संपर्क से हटाने के तुरंत बाद कृत्रिम श्वसन दिया जाता है।

बिजली के झटके का असर इस बात पर काफी निर्भर करता है कि शरीर में करंट प्रवाह का मार्ग क्या है। करंट का हृदय से होकर बहना सबसे अधिक खतरनाक माना जाता है। मसलन, 100 mA का करंट अगर हृदय से होकर न बहे तो इंसान आमतौर पर बच जाता है। पर यही करंट अगर दिल से होकर गुज़रे तो मृत्यु लगभग निश्चित है।

डायथर्मी विधि के अंतर्गत शरीर को दिया गया करंट भी वैसे तो अच्छी-खासी मात्रा का होता है, पर चूंकि उसका शरीर में प्रवाह बहुत ही कम दूरी के लिए होता है, शरीर को कोई खास नुकसान नहीं पहुंचता।

शरीर पर करंट का प्रभाव करंट की आवृति पर भी निर्भर करता है।

यहां एक ग्राफ की मंदद से प्रभावी करंट का, आवृति के साथ संबंध दर्शाया गया है। ग्राफ में प्रभावी करंट वह औसत करंट है जिससे ज़्यादा मात्रा का करंट लगने पर व्यक्ति तार से 'चिपक' जाते हैं। ग्राफ से स्पष्ट है कि 'चिपकाने' की दृष्टि से हमारे घरों में बहने वाला 50 Hz का ए.सी. करंट सबसे अधिक खतरनाक है।

करंट के प्रभाव में लिंग भेद भी देखने को मिलता है। मसलन, जितने करंट से पुरुष तार से चिपके रह जाते हैं, स्त्रियां औसतन उसके दो-तिहाई करंट पर भी अपने आपको तार से अलग करने में असमर्थ पाने लगती हैं।

करंट आपके शरीर से कितने समय बहा है, प्रभाव की दृष्टि से यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अगर करंट मात्र एक सेकंड के लिए बहे तो लगभग 100 mA का करंट आपके हृदय के स्पदंनों को अस्त-व्यस्त करने के लिए पर्याप्त होगा। पर दुर्भाग्यवश बिजली के तार से अगर आप 16 सेकंडों तक चिपके रह गए तो 30 mA का करंट भी आपके दिल की दुर्गति बनाने के लिए काफी है।

झटके खाने के शौकीन

कृत्रिम तरीकों से पैदा की गई बिजली से झटका खाने का सबसे पहला

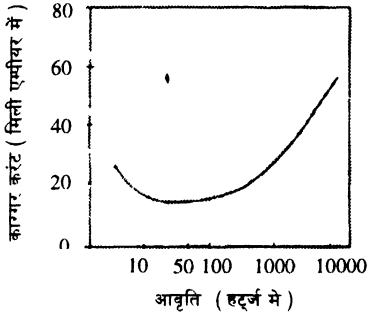

ग्राफ में विद्युत धारा की आवृति और चिपकाने के लिए कारगर करंट के बीच संबंध दिखाया गया है। यहां पर वक्र रेखा उस करंट को दर्शा रही है जिस पर व्यक्ति बिजली के तार से चिपकता है। यदि आप ग्राफ को ध्यान से देखें तो पाएंगे कि लगभग 20 से 100 हर्ट्ज़ आवृति का करंट 20 मिली एम्पीयर से कम पर भी चिपकाने में सक्षम है। चूंकि हमारे घरों में 50 हर्ट्ज़ आवृति वाला करंट प्रवाहित होता है इसलिए यह हमारे लिए खासा खतरनाक है। ग्राफ में देखिए कि अगर आवृति दस हज़ार हर्ट्ज़ हो तो चिपकाने के लिए कम-से-कम कितने करंट की ज़रूरत होगी?

सौभाग्य (या दुर्भाग्य?) सन् 1745 में वोन क्लीस्ट नाम के पादरी को नसीब हुआ था। कहा जाता है कि इस अनचाहे यश की प्राप्ति उन्हें तब हुई जब वे घर्षण द्वारा एकत्र किए गए विद्युत आवेश को कील के ज़रिए एक बोतल में समेटने की जद्दो-जहद में मशगूल थे। इस घटना के कुछ महीनों बाद ही मन्शेनबॉक नाम के एक और सज्जन को बिजली के संपर्क का अनुभव हासिल हुआ। उनके ज़रिए यह बात कुछ ही समय में यूरोप के सभी राजदरबारों में पहुंच गई। आज भले ही बिजली का झटका खाने की संभावना ही आपको कंपा दे पर तब नज़ारा ही कुछ और था। कहते हैं अठाहरवीं सदी के अंतिम दशकों में बिजली के झटके खाना और खिलाना सभी का पसंदीदा शगल बन गया था। आखिर बिजली के झटकों का अनुभव करना राजदरबारों में शान की बात जो बन गई थी। आम दरबारी खुद को या अन्य एक-दो लोगों को मिले इस सौभाग्य का जायज़ा लेकर ही संतुष्ट हो जाते थे, लेकिन फ्रांस के शहंशाह इस तुच्छ उपलब्धि से कैसे संतुष्ट होते! कहते हैं एक बार उन्होंने अपनी फौज की एक पूरी टुकड़ी को एक साथ झटका खिलाने की प्रदर्शनी आयोजित की, जिसमें झटका खाते ही सब सैनिक एक साथ उछल पड़ते थे। आखिर राजा, राजा ही होता है !!

अजय शर्मा· एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध हैं।

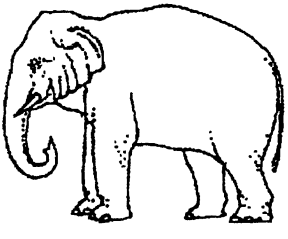

संदर्भ सजिल्द

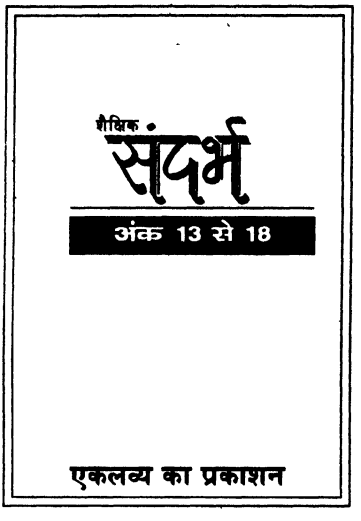

संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के अंक '13 से 18' का सजिल्द रण। इन अंकों में प्रकाशित लेखों का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है। अंक सीमित मात्रा में उपलब्ध।

मूल्य: 60 रुपए (डाकखर्च सहित)।

अंक '1 से 6' और '7 से 12' के सजिल्द संस्करण भी उपलब्ध। इनकी कीमत भी 60 रुपए है।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

पर्यावरण क्या, क्या नहीं

रश्मि पालीवाल

शिक्षा पर सोच-विचार जहां कहीं भी शुरू होता है तो यह बात ज़रूर उठ जाती है कि शिक्षा पर्यावरण आधारित होनी चाहिए। पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकें बनाने वाले लोग इस बात से बहुत जूझते हैं और कई बार तो अंधी गलियों में भी फंस जाते हैं।

आज से 14 साल पहले, यूनिवर्सिटी में पढ़ने–पढ़ाने वाले हम कुछ लोग यह सोचने के लिए जुटे कि स्कूलों में समाज-विज्ञान कैसे पढ़ाना बेहतर होगा। बहुत-सी बातें सोची गईं। उन सब में एक बहुत प्रचलित मान्यता बार-बार उभरकर आती थी कि बच्चों को उनके परिवेश और पर्यावरण के आधार पर पढ़ाना चाहिए। बच्चों के परिवेश में क्या-क्या चीज़ें हैं, और उनके बारे में क्या-क्या पूछा जा सकता है – ये सब बातें खूब होती थीं। इन बातों के बीच एक जनाब ने अचानक एक अलग ही सुर छेड़ दिया। बोले, कि बच्चों में नए परिवेश की बातें जानने का भी ज़बरदस्त कौतूहल होता है – और हमें इस जिज्ञासा भाव की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पर्यावरण के आधार पर ज़रूर पढ़ाया जाए – पर भिन्न पर्यावरणों की बातें भी शामिल रखी जाएं... "मैं सोच नहीं सकता कि कोई बच्चा 11 से 14 वर्ष की उम्र पार कर जाए, सामाजिक-विज्ञान पढ़ जाए, और कभी इग्लू का नाम भी नहीं सुना हो उसने।" शायद उन जनाब के घर में छोटे बच्चे रहे होंगे। हम बाकी लोगों को उनकी बात थोड़ी बेसुरी-सी लग रही थी, पर उसमें किसी सच्चे अनुभव का विश्वास था – तो वो बात मन में कहीं खटकती रही सालों तक।

कुछ समय बाद हमने खुद स्कूलों में जा कर बच्चों से बातचीत करना शुरू किया। मुझे याद है कि छठी कक्षा के तख्ते पर बच्चों ने अपने गांव का नक्शा कितने मज़े से बना डाला था। एक एक जना आता जाता और एक-एक चीज़ नक्शे में भरता जाता। बाकी सब बच्चे चील की निगाह से परखते रहते कि कोई चीज़ थोड़ी भी इधर या उधर तो नहीं बन गई। ये बच्चे पहली बार नक्शा बना रहे थे – पर कितना सहज था पूरा अभ्यास। क्योंकि पर्यावरण आधारित था... है न?

इसी तरह, एक दूसरे गांव में तहसील का नजूल नक्शा हमने स्कूल के बरामदे में फैलाया था। तीसरी से आठवीं तक के बच्चों कीं भीड़ उस पर टूट पड़ी थी। अपना गांव, अपने मामा का गांव, और चाचा की ससुराल का गांव और फलानी सड़क तो फलाना नाला

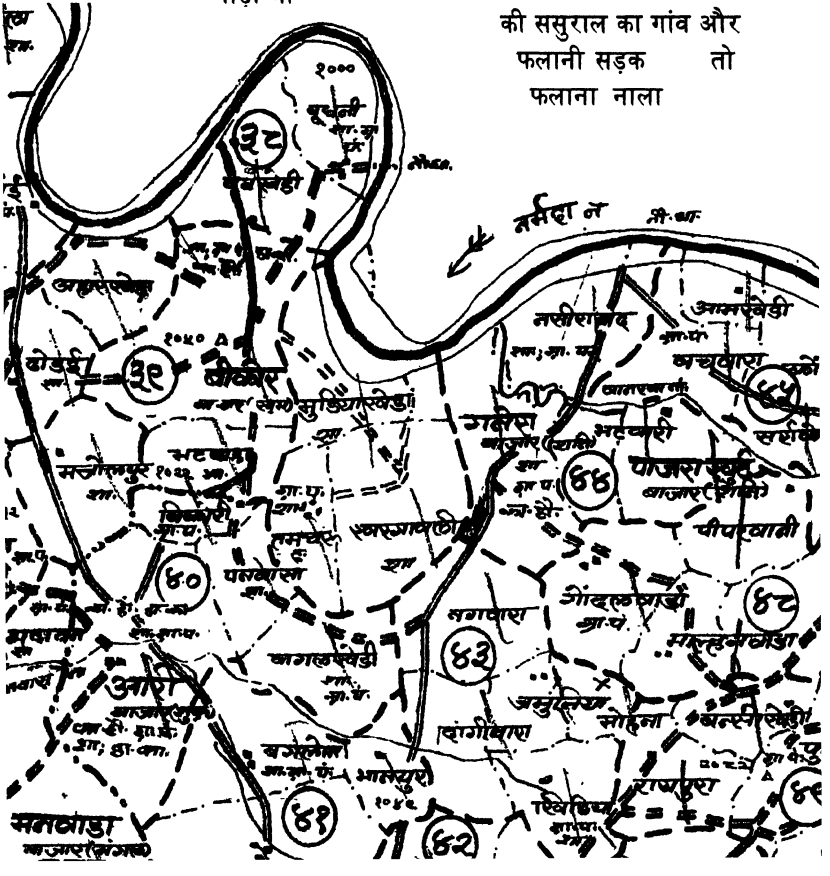

झट-झट पहचान बनती गई – अपनी जानकारी की कसौटी पर तुलती गई . . जब ज़रूरत लगी तो अपने-आप ही संकेतों की सूची भी देख ली, बूझ ली, उपयोग कर ली।

फिर, एक बार की बात है। हमने बच्चों से उनके गांव की खेती पर चर्चा की। कौन-सी फसलें हैं – किस तरह की मिट्टी में कौन-सी फसल होती है . . . किन औज़ारों का उपयोग होता है . . . आदि । बताया बच्चों ने और खूब बताया। उसके बाद वे अपेक्षा करते रहे कि हम भी कुछ बताएंगे, कुछ कहेंगे या करेंगे। मुझे याद है कि हम एक असमंजस का अहसास अपने अन्दर पाते थे कि चर्चा को कहां ले जाएं? हमें तो यही लगा था कि बच्चों को अपने पर्यावरण के बारे में बहुत जानकारी है, उसकी समझ भी है, और उन्होंने कई निष्कर्ष भी निकालकर रखे हैं। बल्कि सीखना तो हमें है। फिर उन्हें हमारे साथ की इस पूरी कवायद से क्या मिल रहा है? हम जैसे अजनबियों से परिचय का कौतूहल व रोचकता – और हमारे आगे मुखरता और आत्म-विश्वास का भाव? क्या यही सब?

दो-चार मुलाकातों के बाद इस सिलसिले का रंग फीका पड़ने लगा। बच्चों को हम कुछ नया सीखने को नहीं दे पा रहे थे। वे थोड़ा उकताने, थोड़ा खिसियाने लगे – और फिर हमसे कहते – "तुम तो कोई कहानी सुनाओ ना?"

उन्हीं दिनों एक बार बच्चों के परिवार का इतिहास पता कर के लिखने का अभ्यास भी करवाया था। इसके लिए कुछ रोचक डिज़ाइनें डाल कर पुस्तिका भी साइक्लोस्टाइल कर ली थी। पुस्तिका

होशंगाबाद तहसील के नक्शे का एक भाग

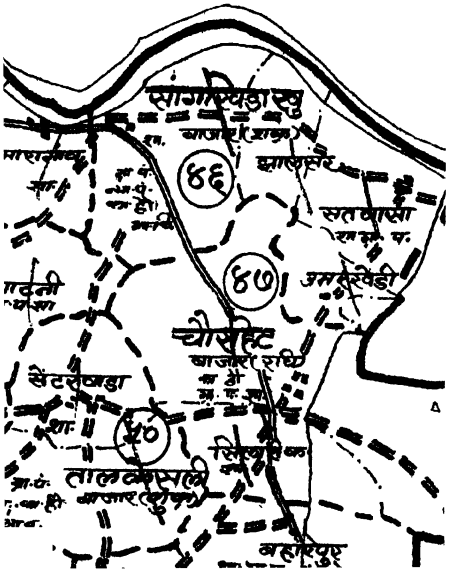

उन्हें रोचक लगी। पर जानकारी काफी कम पता लगाई गई।बच्चे कहते, "हमें मालूम नहीं", "हमने दादाजी से (या पिताजी) से पूछा तो वे डांटने लगे कि क्या बेकार की बातें पूछ रहा है।"

हमारे सामने यह सवाल उठ रहा था कि पर्यावरण से शुरू तो कर लें, पर फिर जाएं कहां? दरअसल शिक्षण का उद्देश्य इतनी-सी बात से स्पष्ट नहीं होता। विचार इस सवाल पर होना होगा कि हम अपने परिवेश को जितना जानते और समझते हैं, उससे ज़्यादा अच्छी तरह से समझना चाहते हैं तो यह कैसे किया जाए? अपने परिवेश के बारे में हमारी खुद की समझ में किस बात की कमी रहती है?

नए तरीके, जानने के...

अपने परिवेश को जानने और उसकी व्याख्या करने के कई तरीके हम लोगों के पास पहले से हैं।

जैसे किसी परिस्थिति की व्याख्या करने में, या किसी बात पर निर्णय लेने में हम उपमाओं व प्रतीकों का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरणों के ज़रिए बात रखते हैं ... कहते हैं, जैसे वो ... वैसे ये .....। आमतौर पर लोग तालिका नहीं बनाते, नक्शे नहीं बनाते, ग्राफ... स्तंभालेख भी नहीं। दुनिया को जानने की ये अलग तरह की विधियां हैं। अगर ये उपयोगी हैं तो उन्हें सीखना महत्व रख सकता है। इन्हें सीखने के लिए अपने पर्यावरण के उदाहरणों को माध्यम बनाया जाए तो सीखना आसान, असरदार और रोचक होगा।

जैसे गांव का नक्शा बनाने में मज़ा आया था, वैसे ही गांव की जानकारी एक तालिका में भरने में भी मज़ा आएगा। एक नई विधि से खेलने का मज़ा। इसी तरह, जैसे तहसील का नक्शा पढ़ने में मज़ा आया था, वैसे ही अगर तहसील के अलग-अलग गांवों की पैदावार की तालिका पेश की जाए, या पिछले 50 सालों में तहसील के गांवों की पैदावार का ग्राफ पेश किया जाए – तो भी उसे पढ़ने में मज़ा आएगा। अपनी जानकारी की पुष्टि होगी – और दी जा रही जानकारी की परख की जाएगी। कोई नई समझ या नए निष्कर्ष शायद निकलें; और शायद नहीं भी निकलें। पर एक नई 'विधि' को इस्तेमाल करने का परिचय मिल जाएगा।

संभव हैं नए रास्ते भी...

अपने पर्यावरण के अध्ययन से विकास के रास्ते समझने की कोशिश भी की जा सकती है।

उत्तराखण्ड पर्यावरण शिक्षा केन्द्र* की कार्यपुस्तकें एक ऐसे ही प्रयास की तरफ बढ़ती हैं। वे बच्चों को नक्शों, तालिकाओं, मापन अभ्यासों, स्तंभालेखों आदि के ज़रिए अलमोड़ा

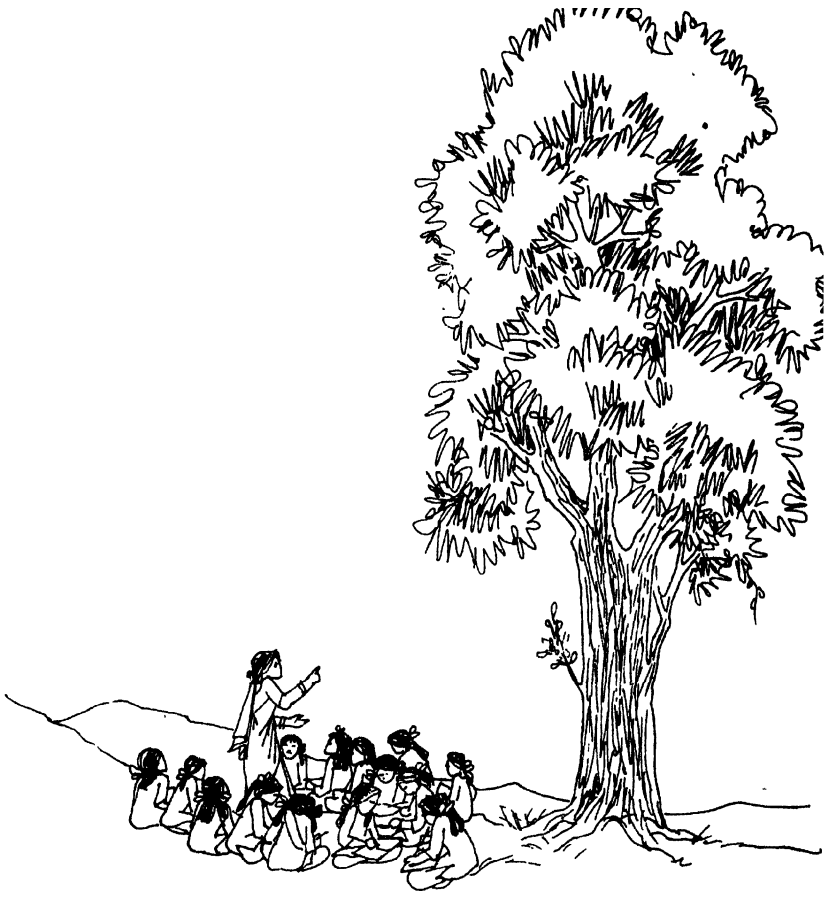

'उत्तराखण्ड पर्यावरण शिक्षा केन्द्र' द्वारा कक्षा-6 के लिए तैयार किताब 'हमारी धरती हमारा जीवन' के पाठ 'हमारे ग्राम वृक्ष' से लिया गया एक चित्र।

क्षेत्र की वर्षा, नदी के बहाव, ज़मीन पर उगने वाले चारे की मात्रा आदि का लेखा जोखा करना सिखाती हैं। वे यह भी सिखाने की कोशिश करती हैं कि अलमोड़ा क्षेत्र की धरती की उत्पादकता अभी की तुलना में कैसे बढ़ाई जा सकती है। यानी अपने पर्यावरण के बारे में वहां के बच्चे अभी तक जिस स्तर पर जानते और सोचते हैं, उस स्तर को आगे ले जाने की कोशिश ये किताबें करती हैं।

पर्यावरण के विकास की एक खास तरह की योजना बच्चों के सामने रखती हैं। इस संबंध में, सोचने और जानने के लिए कई बाते हैं, जैसे, सुझाई गई योजनाएं कितनी उपयुक्त हैं, बच्चों से जो प्रायोगिक कार्य अपेक्षित है वो कितना व्यावहारिक और प्रभावी है, स्कूलों में बच्चे व शिक्षक इस तरह के पाठों को कितनी रुचि और गंभीरता से लेते हैं – ऐसी कई जिज्ञासाएं अपनी जगह हैं, तो भी इन पुस्तकों में 'पर्यावरण' से शुरू करके 'जाएं कहां?' – इसका एक हल सामने आता है।

नए अनुभव कैसे जोड़ लेते हैं? . . .

पर पर्यावरण के आधार पर और भी मंज़िलों पे पहुंचा जा सकता है।

अपने निजी जीवन का उदाहरण लें। हम औरों के किस्से, कहानियां-उपन्यास . . . टी. वी. सीरियलों . . . से जुड़ाव महसूस करते हैं। दूसरों के अनुभव हमारी अपनी किसी कमी को पूरा करते हैं। हमारे अनुभवों का दायरा फैलाते हैं – तुलना करने और सोचने का नया साधन देते हैं। परी कथाएं हों या पौराणिक कथाएं – इनके कई पहलू तो हमारे पर्यावरण में मौजूद ही नहीं हैं – न उड़न खटोले हैं, न अवतार हैं, न देवी दर्शन हैं। पर फिर भी इन कथाओं के कथानकों से हम कुछ सोच, कुछ समझ हासिल कर लेते हैं। कथाओं के मूल कथानक से जुड़ना संभव हो पाता है, इसलिए कथा की छोटी-छोटी अजनबी बातें कोई अड़चन नहीं बनतीं।

इस चीज़ को समझने और देखने का मौका पिछले दस सालों में कई बार मिला है। जिस ग्रामीण स्कूल के छात्रों के साथ हम उनके यहां की खेती-बाड़ी की चर्चा के बाद असमंजस में खड़े हुए थे – कि अब इस बात को कहां ले जाएं? उसी स्कूल के छात्रों के साथ हमने मुगल काल के गांवों व किसानों के पाठ के सन्दर्भ में बेहद जीवन्त चर्चाएं की हैं – जिसमें मुगल-काल की परिस्थिति की भी विवेचना हुई और उसी की तुलना में आज के किसानों की परिस्थिति की भी हुई। एकदम सहजता से हुई, रोचकता से हुई। तो

मुगलकालीन साधारण किसान का घर। यह चित्र विचित्र नाम के चित्रकार ने बनाया था।

इस जीवन्त बातचीत का कथानक क्या था? यह, कि जब किसान शासन के करों के दबाव से परेशान हों तो उनके सामने क्या विकल्प होते हैं, वे क्या कर सकते हैं? तब क्या करते थे? अब क्या करते हैं? क्यों? क्या बदला है?

इस सबसे बच्चों ने अपने परिवेश के बारे में क्या कोई नई या बढ़ी हुई समझ पाई? शायद हां। अपनी खुद की परिस्थितियों के बारे में सोचने-विचारने के हमारे कुछ तौर तरीके बन गए होते हैं – जो कुछ हद तक हमें दूसरों से मिली नसीहतों का नतीजा भी होते हैं। मसलन हम कभी सोचते हैं – आज हालात इतने बुरे हैं कि कोई रास्ता दिखाई नहीं देता . . . या हम सोचते हैं कि लोगों के दिल बुरे हो गए हैं इसलिए आज यह हाल है। पर जब हम मुगल काल के किसानों की जानकारी हासिल करते हैं . . . तो शायद यह सोच भी उभर आए कि हालात तो तब भी अपनी तरह से बुरे थे – पर उस परिस्थिति में लोगों के सामने एक तरह का विकल्प था। आज की परिस्थिति में क्या विकल्प है?

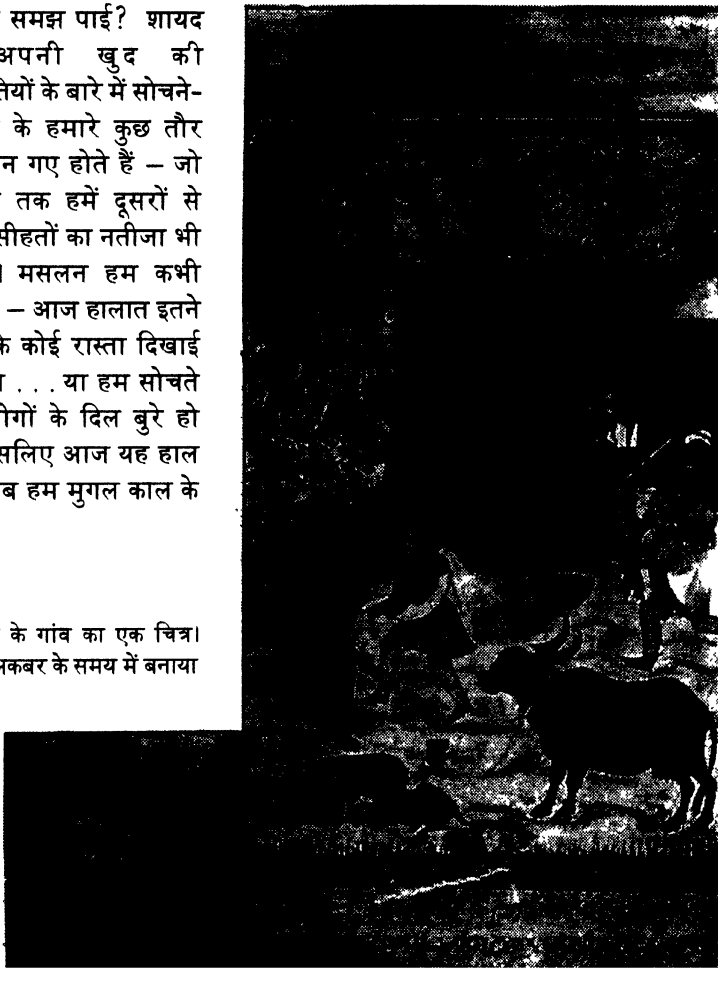

मुगलकाल के गांव का एक चित्र। यह चित्र अकबर के समय में बनाया गया था।

बच्चे इस बात पर बहुत हंसे थे कि मुगलकाल में किसान अगर अपनी ज़मीन छोड़ कर चले जाएं और कुछ साल बाद लौटें तो उन्हें उनकी ज़मीन जोतने के लिए फिर से मिल जाती थी। बोले "आज तो कोई न छोड़े . . . और छोड़े तो दूसरा कोई कब्ज़ा कर ले और कभी न वापस करे।"

कथानक से जुड़ पाने का महत्व एक और अनुभव से स्पष्ट हुआ था। एक बार एक प्रशिक्षण सत्र में हमने प्रशिक्षणार्थियों से पूछा कि पर्यावरण आधारित शिक्षण से क्या समझते हैं। एक व्यक्ति ने कहा – उदाहरण के लिए अगर आप एक कहानी सुनाएं कि दो हज़ार साल पहले एक राजा था, जिसका नाम फलां-फलां था . . . उसके दो बेटे थे . . . उनमें इस बात पर झगड़ा हुआ कि पिता की मौत के बाद राज्य किस को मिलेगा . . . उनके बीच युद्ध होता है जिसमें रथों, भालों का इस्तेमाल होता है। तो अब बच्चों ने क्या रथ व भाले देखे हैं? दो हज़ार साल पहले का समय देखा है? ये बातें तो उनके परिवेश से जुड़ी नहीं हैं। हमने इसी उदाहरण का विश्लेषण किया। सभी से कहा कि ध्यान से हर पंक्ति के भाव को समझें और बताएं कि इसमें से कौन-सा भाव बच्चों के परिवेश में नहीं है?

'दो हज़ार साल पहले' यानी कितने समय पहले यह बच्चे कल्पना नहीं कर पाएंगे। यह ठीक बात थी। इसके बाद – राजा, जो एक पिता है, के दो पुत्र हैं . . . यह तो परिवेश में मौजूद है . . . दो पुत्र पिता की संपत्ति को लेकर स्पर्धा करते हैं . . . यह भी परिवेश में मौजूद है। रथ और भाले आज इस्तेमाल नहीं होते – पर बच्चों के सांस्कृतिक परिवेश में ये भी मौजूद हैं – पौराणिक कथाओं में, मन्दिरों में, कैलेंडरों में बने चित्रों में, रामलीला की झांकियों में। . . . फिर ऐसी एक कहानी पर्यावरण आधारित नहीं है – यह किस कारण से माना जाता है?

प्रशिक्षणार्थी काफी गहरी सोच में पड़ गए थे। पर्यावरण में क्या नहीं है, इसकी सूची बनाई तो बड़ी चुनिंदा चीज़ें उसमें आईं . . . . महाद्वीप, महासागर, पृथ्वी की गतियां, ब्रह्मांड, पृथ्वी कैसे बनी, पहाड़ कैसे बने? पांच हज़ार साल – दस लाख साल पहले की धारणा . . .। इन चुनिंदा चीज़ों पर कैसे व कब बात करनी चाहिए, यह खास शोध व अध्ययन का मसला है।

एक और अनुभव है। एक बार कक्षा तीन के लिए भाषा-पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक तैयार की जा रही थी। उसमें टोलस्टॉय की एक छोटी-सी मार्मिक कहानी का चयन हुआ। कहानी है – गुठली। एक पिता है जो अपने बच्चों के लिए आलू-बुखारे ला कर रखता है और खाने के बाद सब मिल

कर खाएंगे यह तय होता है। सबसे छोटा बालक अपना लालच नहीं रोक पाता और चोरी छिपे एक आलू-बुखारा खा लेता है। जब सब खाने को बैठते हैं और पिता देखते हैं कि एक फल कम है तो पूछताछ करते हैं। सब मना करते हैं और छोटा बालक भी झूठ बोल देता है कि उसने नहीं खाया। पिता कहते हैं कि उन्हें सिर्फ यह चिन्ता है कि खाने वाले ने गुठली तो नहीं निगल ली – क्योंकि गुठली खाने पर व्यक्ति मर जाता है। छोटा बालक घबरा कर कह उठता है कि उसने गुठली तो खिड़की के बाहर फेंक दी थी। चोरी और झूठ पकड़ा जाता है – सब हंस पड़ते हैं। छोटा बालक झेंप कर रो पड़ता है।

अब बताइए यह कहानी पर्यावरण आधारित है या नहीं? इसके कथानक में कौन-सी बाते हैं जो हम सब के अनुभव लोक में नहीं पाई जाएंगी? शायद सिर्फ एक चीज़ – फल का नाम – आलू-बुखारा। नहीं तो, एक छोटे बच्चे के मन का लालच, चोरी, झूठ, झेंप – किसके जीवन का सत्य नहीं है? किताब बनाने के काम में जुटे लोगों के बीच बड़ी घमासान बहस हुई कि क्या आलू-बुखारा शब्द हटाकर चीकू डाल देना चाहिए – ताकि कहानी पूरी तरह पर्यावरण आधारित हो जाए? क्या गारंटी है कि तीसरी कक्षा पढ़ने वाले हर छात्र ने चीकू देखा और खाया होगा? या हर शिक्षक ने ही? अगर ऐसी एक बात भी नहीं आनी चाहिए जो कम से कम शिक्षक ने न देखी हो तो क्या ताजमहल या अमरकंटक पर कभी पाठ नहीं होगा? और अगर ताजमहल पर पाठ हो सकता है तो गुठली कहानी में फल का नाम आलू-बुखारा ही क्यों नहीं रह सकता?

वोई-वोई . . .

पर्यावरण अध्ययन को लेकर एक असमंजस का भाव कई लोगों के बीच देखने को मिला। एक स्वैच्छिक संस्था के शिक्षकों की बैठक में भाग लेने का मुझे एक बार मौका मिला था। उन लोगों का प्रयास था कि किसी एक पाठ्यपुस्तक पर निर्भर होकर शिक्षण कार्य नहीं किया जाना चाहिए – संदर्भ पुस्तकालय की पुस्तकों से सामग्री जुटा कर पर्यावरण अध्ययन का काम किया जाना चाहिए। बल्कि सबसे पहले बच्चों से ही जानकारी इकट्ठी की जानी चाहिए।

एक शिक्षक ने एक बहुत महत्वपूर्ण अनुभव सुनाया। वे तीसरी कक्षा पढ़ा रहे थे। उनका कहना था, "थोड़े समय बाद बच्चे पर्यावरण की कक्षा में बोर होने लगते हैं। जब हम उनसे उनके आसपास की बातें पूछते हैं तो वे कहते हैं कि सर यही सब तो पिछले साल भी पूछा था। 'वोई-वोई बातें पूछते

हो आप तो। इस कक्षा में कुछ खेल करवाओ न।' तब हम पर्यावरण में उपलब्ध खेल आदि बच्चों को करवाते हैं। इससे पर्यावरण वाली बात भी हो जाती है – और बच्चों में रुचि भी बनी रहती है।''

चर्चा हुई कि बच्चों से 'वोई-वोई' जानकारी क्यों पूछनी पड़ती है? शिक्षकों ने अपना अनुभव बताया कि मान लो ईंधन पर बात कर रहे हैं। तेल है या कोयला है . . . इसके बारे में कुछ ज़्यादा बात या नई बात करनी हो तो वे बातें बच्चों को तो मालूम नहीं होतीं हैं, हमें भी नहीं मालूम होतीं। सन्दर्भ पुस्तकों से ढूंढ सकते हैं पर अक्सर शिक्षकों की तैयारी नहीं हो पाती। तब बच्चे कहते हैं कि बार-बार वही बातें क्यों पूछ रहे हो – हमें खेल ही खिला दो। पर्यावरण अध्ययन में क्या करना चाहिए हमें समझ में नहीं आता।

अलग-अलग आयाम . . .

इन सारे अनुभवों से गुज़रने के बाद हमारी क्या समझ बन सकती है? पर्यावरण शिक्षा से जुड़े अलग-अलग आयाम नज़र आते हैं।

जहां हम अपने समाज को जानने समझने की नई विधियां सीखना चाहते हैं या अपने पर्यावरण के विकास के रास्ते खोजना चाहते हैं वहां स्थानीय जानकारी का इस्तेमाल बहुत प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। पर उतना ही ज़रूरी और महत्वपूर्ण है समाज के बारे में नए अनुभवों का परिचय प्राप्त करना, इंसानी ज़िंदगी की विभिन्नताओं का अनुभव लेना – जिसके लिए दूसरे समाज, स्थान या समुदाय की जानकारी अत्यन्त ज़रूरी हो जाती है।

और जैसा कि हमने पहले कहा है 'दूसरे' पर्यावरण की जानकारी से जुड़ना, उसे समझना अपने आप में मुश्किल नहीं हो सकता। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम वह जानकारी किस तरीके से प्रस्तुत कर रहे हैं। क्या हम लंबी-लंबी सूचियां, पारिभाषिक बातें, अमूर्त शब्दावली, असंबद्ध जानकारी के टुकड़े समेट कर पाठ लिख रहे हैं – या एक सरस कथानक-सा पाठ लिख रहे हैं? सही मानिए – अपने ही गांव मोहल्ले की जानकारी नीरस, अर्थहीन ढंग से लिखी हुई मिले तो उसमें कुछ भी समझ में नहीं आएगा। यह भ्रम हम न पालें कि अपने गांव, अपने ज़िले, अपने राज्य की बातें पहले बताएं तो सही शैक्षिक सिद्धांत का पालन कर रहे होंगे। लोगों के जीते जागते ठोस अनुभव हों तो हमारे जीवन्त अनुभवों से कैसे नहीं जुड़ेंगे भला?

फिर वो बात अपने मोहल्ले की हो या ध्रुवीय प्रदेश के इग्लू वासियों की।

रश्मि पालीवाल: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

रूस के किसानों का गुणा
एक दुगुना तो एक आधा

संदर्भ के 17वें अंक में ज़रा सिर तो खुजलाइए स्तंभ में एक सवाल पूछा गया था – रूस के किसानों के गुणा करने के तरीके से जुड़ा। इसका एक जवाब अंक 18 में छपा था जिसमें 'द्विअंकीय पद्धति (Binary System)' से इसके हल के बारे में समझाया गया था। लेकिन इस सवाल के बारे में सोचने के और भी तरीके मौजूद हैं। इस बार इन तरीकों के साथ ही 18वें अंक में पूछी गई 'पहिए वाली उलझन' की चर्चा और साथ में एक नई गुत्थी 'सिर खुजलाने' के लिए।

संदर्भ के 17वें अंक में एक सवाल था – रूस के किसानों के गुणा करने के तरीके के बारे में। कोई दो आंकड़े हैं – **23** और **16**.

एक आंकड़े को दुगना करते जाओ और दूसरे को आधा करते जाओ जब तक एक न आ जाए।

~~23~~	-	~~16~~
~~46~~	-	~~8~~
~~92~~	-	~~4~~
~~184~~	-	~~2~~
368	-	1
368		

सम संख्या के सामने के आंकड़े काट दो, बचे आंकड़ों को जोड़ लो तो गुणा का सही जवाब आ जाता है। ऐसा क्यों हुआ?

इसलिए कि दो संख्याएं **9** और **6** का गुणनफल अगर **54** है तो एक अंक को आधा और दूसरे को दुगना करने पर गुणनफल उतना ही रहेगा -

9 × 6 = 54

9 × 2 × 6/2 = 54 होगा

इसलिए

23 × 16 = 368

46 × 8 = 368

92 × 4 = 368

184 × 2 = 368

368 × 1 = 368

अगर भाग देने वाले आंकड़े में विषम संख्या न आए तो जहां एक आएगा उसके सामने वाले गुणनफल का आंकड़ा उतने गुना होगा जितना भाग देने वाला आंकड़ा है — जैसे 368, 23 का 16 गुना है।

एक दूसरा

23 - 13

46 - 6

92 - 3

184 - 1

भाग देने वाले आंकड़े में अगर विषम संख्या आ जाए तो हम ऊपर का बचा हुआ एक छोड़ देते हैं। सम संख्या के सामने के आंकड़े काट दीजिए बचे आंकड़ों का जोड़ 23 × 13 का गुणनफल होगा।

यहां 23 × 2 तो हो गया पर 13/2 करने पर 1 बाकी रहा और इस एक को हम छोड़ देते हैं। यानी कि यहां पर हम 23 का एक गुना अर्थात 23 छोड़ रहे हैं। (276 + 23 = 299)

23 × 13 = 299] (23 × 1 छूटा)

46 × 6 = 276

92 × 3 = 276] (92 × 1 छूटा)

184 × 1 = 184

और इसी तरह अंत में 3 का आधा करने पर एक छूटा। यहां पर हम 92 का एक गुना छोड़ रहे हैं।

अत: विषम संख्या को 2 से विभाजित करने में जहां-जहां एक छूट रहा है उसके असर को जोड़ना पड़ेगा ही:

$$23 \times 13 = 299 \quad (13 \text{ में से } 1 \text{ छूटा})$$

$$46 \times 6 = 276 + 23 = 299$$

$$92 \times 3 = 276 + 23 = 299 \quad (3 \text{ में से } 1 \text{ छूटा})$$

$$184 \times 1 = 184 + 23 + 92 = 299$$

यह एक और तरीका है इस सवाल को समझने का। इस हल तक पहुंचने में मुझे गणित की प्रारम्भिक प्रक्रियाएं ही करनी पड़ी, द्विअंकी पद्धति या किसी अन्य विशेष सिद्धांत की ज़रूरत नहीं लगी। परन्तु इस हल तक पहुंचने के लिए जोड़ तोड़ करते वक्त मुझे संख्याओं के बारे में कई नई बातें पता चली, शायद वे सब गणित की दृष्टि से अत्यन्त सामान्य होंगी परन्तु खुद खोजकर किसी बात को समझो तो आनंद आता ही है।

(यह जवाब भेजा था मुकेश मालवीय, सहायक शिक्षक, प्राथमिक शाला पावरझंडा, तहसील शाहपुर, ज़िला बैतूल, म.प्र. ने)

इसी सवाल के दो और सही हल आए हैं।

प्रमोद मैथिल (सरदार पटैलपुरा वार्ड नंबर 3, पुरानी इटारसी) ने सही जवाब देने के बाद सुझाया है कि दो की बजाए तीन से गुणा और भाग करते हुए भी ऐसी ही विधि विकसित की जा सकती है। एक उदाहरण लेकर उन्होंने यह भी दर्शाया है कि यह विधि थोड़ी जटिल है। क्या आप सोचना चाहेंगे कि ऐसा कैसे हो सकता है और क्या जटिलता है इस तरीके में।

मोहम्मद रज़्ज़ाक (बालागंज, होशंगाबाद) का कहना है कि इस तरीके में एक तरफ दशमलव संख्या भी ली जा सकती है शर्त केवल इतनी है कि उस संख्या को ही दुगना करने के लिए चुना जाए। उनके शब्दों में, दो से भाग देने की तरफ दशमलव संख्या रखने पर 'इस विधि की सीमा आ जाती है'। ऐसा क्यों?

ढाई चक्कर की गुत्थी

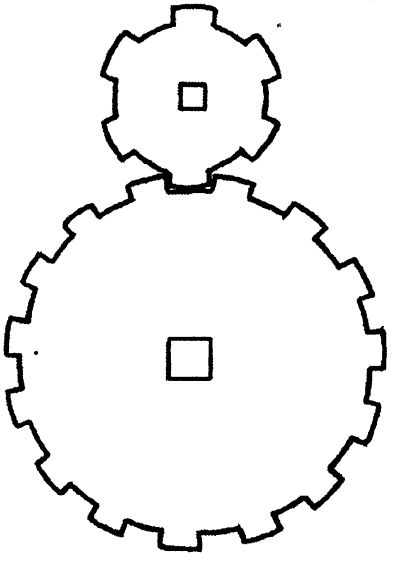

चित्र : 1

सवाल था कि बड़े पहिए मे 15 दांते हैं और छोटे पहिए में 6 दांते हैं; ऐसे में छोटे पहिए को बड़े पहिए के चारों ओर एक पूरा चक्कर घूमने के लिए अपनी धुरी पर कितनी बार घूमना पड़ेगा?

खूब जवाब आए – सभी ने फट से भाग दिया और लिखा ढाई चक्कर; केवल एक जवाब फर्क था जिसमें लिखा था साढ़े तीन चक्कर। वही जवाब सही है। यह जवाब था *मुकेश त्रिवेदी, 9, ज़मींदार पुरा, आगर मालवा, ज़िला शाजापुर का।*

किसी भी पहेली या सवाल हल करते वक्त पहला नियम तो यही होता है कि अगर बहुत ही आसानी से जवाब मिल रहा हो तो तुरन्त शक होना ही चाहिए कि कहीं पेंच ज़रूर होगा। यहां पर पेंच है 'अपनी धुरी पर कितनी बार घूमेगा' और उसे समझने का एक ही तरीका है कि दोनों पहिए बनाकर

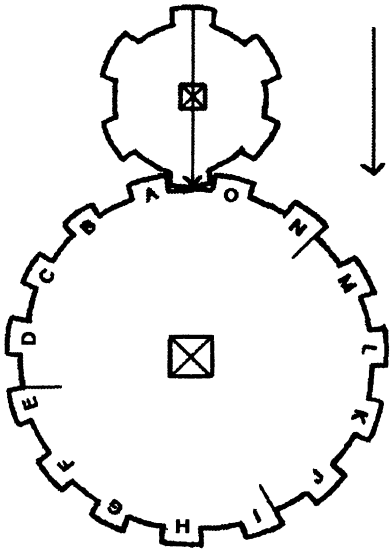

चित्र-2

घुमाकर देखा जाए उन्हें।

चित्र-2 को देखिए। इसमें छोटे पहिए पर एक तीर का निशान लगाया है ताकि हम पता लगा सकें कि कब छोटे पहिए ने अपनी धुरी पर चक्कर पूरा कर लिया, और बड़े पहिए के दांतों को नामांकित किया गया है।

बाहर कागज़ पर छोटे पहिए पर बने निशान के समानान्तर एक तीर बना हुआ है। छोटा पहिया अपनी धुरी के चारों ओर एक चक्कर तब घूमेगा जब कि उसका अक्ष 360 डिग्री घूमकर वापस उसी स्थिति में आ जाए यानी कि बाहरी तीर के समानान्तर हो जाए।

आप बड़े चक्के को किसी जगह पर चिपका लीजिए और छोटे पहिए को उसके चारों ओर घुमाइए। पहला चक्कर पूरा होता है 'E' दांते के पास (जहां आड़ी रेखा दिख रही है)।

दूसरा चक्कर पूरा हो जाएगा 'I' के पास और तीसरा चक्कर पूरा हो जाएगा 'N' के पास। उसके बाद फिर आधा चक्कर और लगाने पर छोटा पहिया फिर से अपनी जगह पर आ जाएगा। आड़ी रेखाओं और बाहरी निशान का ख्याल रखें।

क्या कोई सामान्य सिद्धांत भी बना सकते हैं? एक ही साइज़ के दो सिक्कों के साथ करके देखिए क्या होता है।

(ज़रा सिर तो खुजलाइए की गुत्थी पृष्ठ 88 पर)

एटीपी और मांसपेशियों का सिकुड़ना

सुशील जोशी

मांसपेशियां सिकुड़ती हैं यह तो ठीक है लेकिन इस सिकुड़न के लिए उन्हें ऊर्जा कहां से मिलती है?
कैसे बदलती है रासायनिक ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा में?

यह तो जानी मानी बात है कि शरीर की सभी क्रियाओं में ऊर्जा लगती है। उससे भी ज़्यादा जानी मानी बात है कि यह ऊर्जा भोजन के विभिन्न घटकों के विघटन से प्राप्त होती है। जब हम कहते हैं 'शरीर की क्रियाएं' तो इसमें मात्र शरीर की हरकतें ही नहीं बल्कि कई सारी अन्दरूनी भौतिक व रासायनिक क्रियाएं भी शामिल हैं। मसलन, दिल का धड़कना, भोजन का पचना, संवेदनाओं का ग्रहण किया जाना, नए-नए रसायनों का

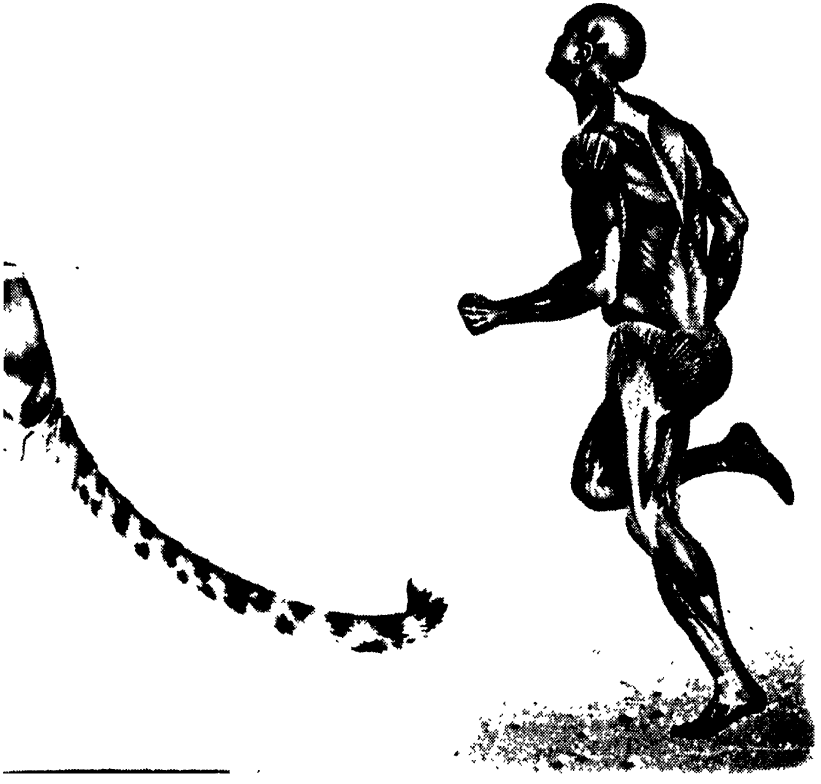

बनना, रोग-प्रतिरोध, शरीर के तापमान का नियंत्रण, नई कोशिकाओं का निर्माण वगैरह वगैरह। इन अलग-अलग क्रियाओं के लिए ऊर्जा भी अलग-अलग रूपों में चाहिए। दिल धड़कने और हाथ-पैर हिलाने के लिए यांत्रिक ऊर्जा चाहिए जबकि प्रोटीन बनाने के लिए रासायनिक ऊर्जा चाहिए। गुर्दे में से हानिकारक पदार्थों को छानने के लिए अलग किस्म की ऊर्जा चाहिए तो शरीर का तापमान नियंत्रित करने के लिए ऊष्मा रूपी ऊर्जा को हैण्डल करना होगा। ऐसी क्रियाएं जिनमें ऊर्जा खर्च होती है, उन्हें *ऊर्जाशोषी या एण्डरगॉनिक क्रियाएं* कहा जाता है।

इतनी तमाम किस्म की ऊर्जाशोषी क्रियाओं को चलाने के लिए ज़रूरी है कि शरीर में कुछ *ऊर्जादायक यानी एक्सरगॉनिक क्रियाएं* भी चलें। भोजन के घटकों का ऑक्सीजन की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में विघटन ही यह

ऊर्जादायक क्रिया है।

ऊपर ऊर्जाशोषी व ऊर्जादायक क्रियाओं की बात करते हुए हमने यह भी कहा कि ऊर्जाशोषी क्रियाएं इतनी किस्म की हैं कि उनमें ऊर्जा अलग-अलग रूपों में लगती है। तो सवाल यह उठता है कि क्या ऊर्जादायक क्रिया को इतने अलग अलग ढंगों से चलाया जाता है? दूसरे शब्दों में, सवाल यह है कि ऊर्जाशोषी व ऊर्जादायक क्रियाओं की परस्पर कड़ी कैसे जुड़ती है?

एक कड़ी है एटीपी

यही कड़ी जोड़ने का काम एक अनोखा रसायन करता है जिसका नाम है एडीनोसीन ट्राई फॉस्फेट या संक्षेप में एटीपी। एटीपी नामक इस रसायन का ऐसा कुछ कमाल है कि यह ऊर्जादायक क्रियाओं से उत्पन्न ऊर्जा को अपने में संचित रखता है और ऊर्जाशोषी क्रिया के लिए प्रदान कर देता है। ऊर्जाशोषी क्रिया की प्रकृति के अनुरूप एटीपी सही रूप में ऊर्जा प्रदान करता है। अर्थात यह उत्पादन-कर्त्ता व ग्राहक के बीच एक सेतु का कार्य करता है। इसलिए एटीपी को ऊर्जा की सार्वभौमिक मुद्रा भी कहते हैं। जी हां, सार्वभौमिक! कारण यह है कि एटीपी सभी जीवधारियों में ऊर्जा के हस्तांतरण की भूमिका निभाता है। सूक्ष्मतम बैक्टीरिया से लेकर विशालकाय व्हेल तक और एककोशीय शैवाल से लेकर 'पेड़ खजूर' तक सबमें एटीपी पाया जाता है और ऊर्जा विनिमय की भूमिका निभाता है।

हाल ही में जिन तीन व्यक्तियों को रसायन शास्त्र का नोबल पुरस्कार मिला, उन तीनों ने एटीपी पर ही अनुसंधान किया है। इससे पूर्व कम से कम तीन और व्यक्तियों कों एटीपी संबंधी नोबल पुरस्कार मिल चुका है।

यहां हम एटीपी की उपरोक्त महत्वपूर्ण भूमिका को समझने की कोशिश करेंगे। आगे बढ़ने से पूर्व कुछ बातों का स्पष्टीकरण करना ज़रूरी है। सबसे पहली बात तो यह है कि छः नोबल पुरस्कारों के

एटीपी सभी जीवधारियों में ऊर्जा के हस्तांतरण की भूमिका निभाता है। सूक्ष्मतम बैक्टीरिया से लेकर विशालकाय व्हेल तक और एककोशीय शैवाल से लेकर 'पेड़ खजूर' तक सबमें एटीपी पाया जाता है और ऊर्जा विनिमय.

बावजूद इस वक्त भी एटीपी को लेकर कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम भलीभांति समझ नहीं पाए हैं। अतः यह सतर्कता रखनी होगी कि इन सब बातों को अन्तिम शब्द न मानें। दूसरी बात यह है कि एटीपी रसायन के कई पहलू अत्यंत पेचीदा हैं। इन्हें सरल करने के चक्कर में त्रुटि रह जाने की सम्भावना है। तो अब आगे बढ़ते हैं।

एटीपी की भूमिका

आपने भोजन किया, वह पचकर कोशिकाओं में पहुंचा। दूसरी ओर खून के साथ ऑक्सीजन आ ही रही है। तो शुरू हो जाए ऑक्सीकरण और निकल जाए सारी ऊर्जा! जल्दी ही सारी ऊर्जा निकल जाएगी, फिर दिन भर क्या होगा? परन्तु ऐसा होता नहीं है। ऊर्जा तभी निकलती है, जब ज़रूरत होती है। यानी भोजन व ऑक्सीजन दोनों की उपस्थिति के बावजूद ऑक्सीकरण की क्रिया नहीं चलती रहती। कोई न कोई व्यवस्था ज़रूर है जो इस प्रक्रिया पर लगाम लगाती है। इस बिन्दु को ध्यान रखिए, हम आगे इसका समाधान करेंगे।

फिलहाल मुद्दा यह है कि जब ऊर्जा की ज़रूरत होती है तब क्या किया जाता है। तथ्य यह है कि प्रत्येक कोशिका में एटीपी के करोड़ों या शायद अरबों अणु मौजूद रहते हैं। ऊर्जा की ज़रूरत ये अणु पूरी करते हैं। कैसे? इसे समझने के लिए एटीपी की संरचना पर गौर करना होगा।

एटीपी की संरचना

एटीपी का अणु तीन इकाइयों से मिलकर बना होता है: एडीनीन नामक कार्बनिक क्षार, राइबोज़ नामक शर्करा और तीन फॉस्फेट समूह।

एडीनीन व राइबोज़ की मिली-जुली इकाई को एडीनोसीन कहते हैं। अतः एटीपी की संरचना को निम्नानुसार भी लिख सकते हैं:

[A]-(P)-(P)-(P)

[A] = एडीनोसीन

(P) = फॉस्फेट

आगे हम एटीपी को इसी रूप में दर्शाएंगे।

यदि एटीपी के अणु में से एक फॉस्फेट समूह निकाल दिया जाए तो एडीनोसिन डाई फॉस्फेट (एडीपी) बनता है। इसी तरह एडीपी के अणु में से एक और फॉस्फेट समूह निकाल दिया जाए तो एडीनोसीन मोनो फॉस्फेट (एएमपी) बनता है।

[A]-(P)-(P)-(P) **एटीपी**

[A]-(P)-(P) **एडीपी**

[A]-(P) **एएमपी**

एटीपी से एडीपी बनने में तथा एडीपी से एएमपी बनने में कुछ ऊर्जा मुक्त होती है। एएमपी को यदि तोड़ा जाए तो भी कुछ ऊर्जा निकलती है मगर इसकी मात्रा उतनी नहीं होती जितनी प्रथम दो फॉस्फेट समूह टूटने पर निकलती है।

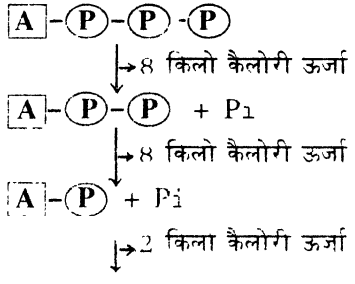

इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि प्रथम दो फॉस्फेट बन्धनों में भरपूर ऊर्जा मौजूद है। इन्हें 'ऊर्जा सम्पन्न बन्धन' भी कहा जाता है। इन बन्धनों को दर्शाने के लिए प्रायः एक सरल रेखा की बजाए लहरदार रेखा का उपयोग किया जाता है:

यहां यह कह देना लाज़मी है कि फॉस्फेट समूह को अलग करने की क्रिया का ज़िक्र यहां जल अपघटन यानी हाइड्रोलिसिस के संदर्भ में हो रहा है।

यहां एक और बात जानने योग्य है: जिस तरह से फॉस्फेट समूह को हटाने पर ऊर्जा प्राप्त होती है, उसी प्रकार से फॉस्फेट समूह वापस जोड़ने के लिए ऊर्जा खर्च करना होती है।

मैं यहां इस समस्या को जानबूझकर नहीं उठा रहा हूं कि किसी अणु में यह ऊर्जा क्यों व कैसे होती है तथा किसी बंधन को तोड़ने-बनाने में ऊर्जा का जमा-खर्च क्यों होता है।

प्रत्येक कोशिका में एटीपी के करोड़ों अणु मौजूद होते हैं। जब ऊर्जा की ज़रूरत होती है तब इन्हे उपयोग किया जाता है। एटीपी को एडीपी में तब्दील करने हेतु विशेष किस्म के एन्ज़ाइमों की जरूरत होती है। एक समूह के रूप में इन्हें 'एटीपीएज़' कहते हैं। अर्थात एटीपीएज़ नाम से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह किसी एक एन्ज़ाइम का नाम है। एटीपीएज़ समस्त जीवधारियों में पाए जाते हैं। एटीपीएज़ विशेष की प्रकृति पर निर्भर करता है कि ऊर्जा किस रूप में मिलेगी तथा किस काम आएगी। ये काम मोटे तौर पर निम्न किस्मों के होंगे:

1. यांत्रिक कार्य – जैसे मांसपेशियों का सिकुड़ना
2. रासायनिक कार्य – जैसे प्रोटीन वगैरह का निर्माण
3. ऊष्मा उत्पन्न करना
4. पदार्थों (खासकर आयनों) का स्थानांतरण करना – जैसे तंत्रिका संवेदनाओं में या गुर्दे में।

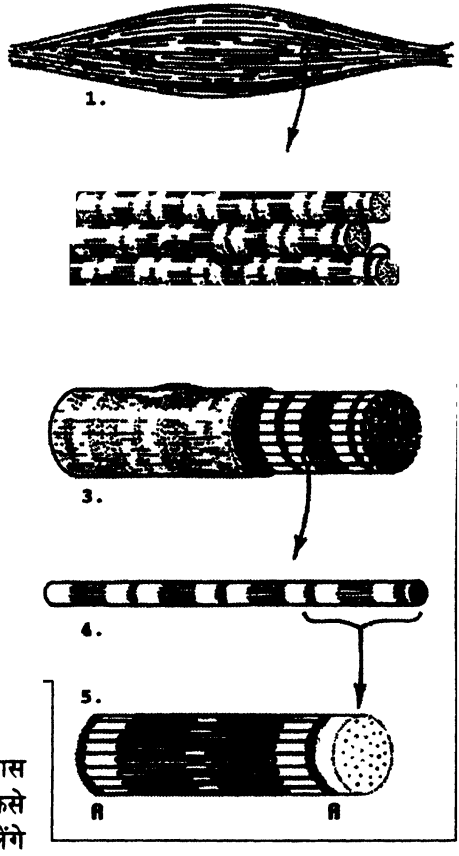

सिकुड़न की कड़ी: कंकाल की मांसपेशी के विभिन्न हिस्से। सामान्य तौर पर दिख रही मांसपेशी के एक तंतु को अगर खोलें तो वह और भी पतले तंतुओं से मिलकर बना होता है। इन पतले तंतुओं में से अगर एक को खोलें तो यह भी और पतले तंतुओं का बंडल निकलता है। इस पतले तंतु को अगर सूक्ष्मदर्शी से देखा जाए तो इसमें हल्के और गाढ़े रंग *(यहां चित्र में सफेद और काली)* पट्टियों का पैटर्न दिखता है। सफेद पट्टी के बीच में एक काली-सी रेखा दिखती है। दो काली रेखाओं 'A' के बीच के हिस्से को एक संकुचन इकाई कहते हैं।

इस बार हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि एटीपी यांत्रिक ऊर्जा कैसे प्रदान करता है। हम उदाहरण लेंगे मांसपेशियों के संकुचन का और मांसपेशी होगी कंकाल से जुड़ी मांसपेशी।

मांसपेशियों का सिकुड़ना

यह तो आप जानते ही हैं कि हाथ-पांव हिलाने डुलाने के लिए मांसपेशियों की सिकुड़न ज़िम्मेदार है। मांसपेशियां हड्डियों से जुड़ी होती हैं। जब मांसपेशियां सिकुड़ती हैं तो वे हड्डियों को खींचती हैं और हड्डी में हरकत होती है। सवाल यह है कि मांसपेशियां सिकुड़ती कैसे हैं और इसके लिए ऊर्जा कैसे मिलती है। इसे समझने के लिए कंकाल से संबंधित किसी पेशी की रचना को देखें।

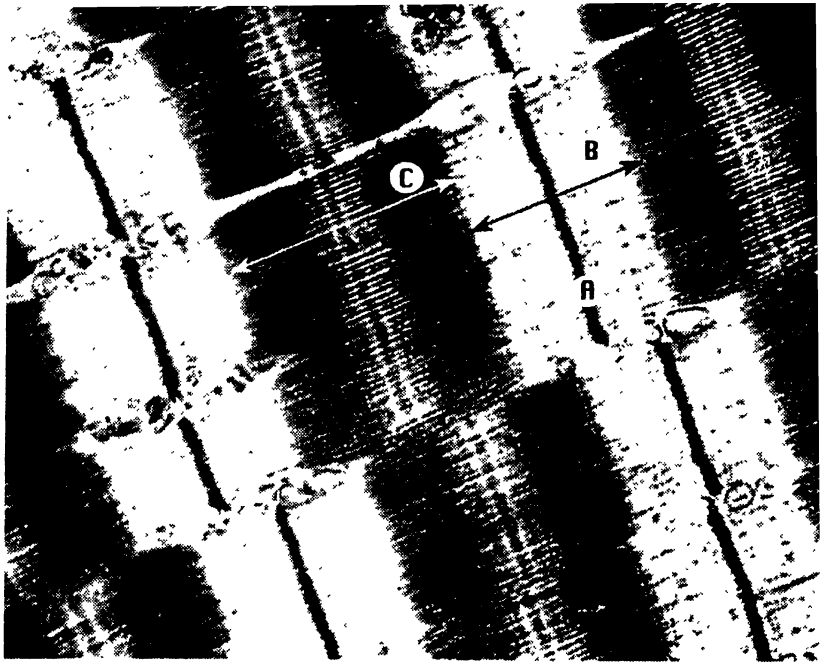

खरगोश की कंकाल से जुड़ी एक मांसपेशी का इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ

अगर कंकाल की एक मांसपेशी को खासा बड़ा करके देखें (ऊपर का चित्र) तो इसमें एक के बाद एक क्रम में जमी सफेद-काली पट्टियों जैसी रचनाएं दिखती हैं। दो काली रेखाओं **(A)** के बीच का भाग मांसपेशी की एक संकुचन इकाई (Contractile Unit) मानते हैं।

जब मांसपेशी सिकुड़ती है तो काली रेखाएं **(A)** एक दूसरे के पास आ जाती हैं; उनके साथ जुड़ी सफेद पट्टियां **(B)** संकरी हो जाती हैं। लेकिन बीचों-बीच जो काली मोटी-सी **(C)** पट्टी दिख रही है उसकी चौड़ाई में लगभग नहीं के बराबर फर्क आता है।

अगर एक इकाई को और बड़ा करें तो पाएंगे कि यह दो तरह के तंतुओं से मिलकर बनी होती है जो एक खास क्रम से जमे होते हैं। पतला तंतु एक्टिन है और मोटा तंतु मायोसिन। इनकी जमावट की वजह से ही हमें काली-सफेद पट्टियों का पैटर्न नज़र आता है। मोटे मायोसिन तंतु **C** पट्टी में पाए जाते हैं। इस पट्टी की चौड़ाई ठीक उतनी ही होती है जितनी कि मायोसिन तंतु की लंबाई।

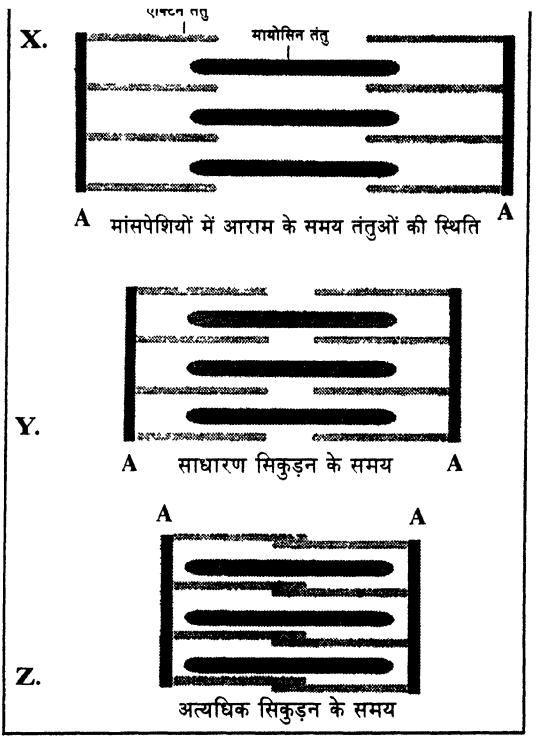

पतले वाले एक्टिन तंतु मुख्य तौर पर **B** पट्टी में पाए जाते हैं, लेकिन ये आगे बढ़कर **C** पट्टी में भी धंसे होते हैं। मोटी काली रेखा **A** वह संरचना है जिस पर एक्टिन टिके होते हैं।

मायोसिन तंतु

मायोसिन तंतु मायोसिन नामक प्रोटीन के अणुओं की शृंखला से बना होता है। इसका एक अणु लगभग 140 नैनोमीटर (एक नैनोमीटर $=10^{-9}$ मीटर) लंबा होता है।

मायोसिन प्रोटीन की रचना में एक लंबी पूंछ होती है तथा दूसरी ओर घुंडी नुमा सिर होता है जो एक ओर झुका होता है। सारे तंतुओं की पूंछें आपस में गुंथी होती हैं। नतीजा यह होता है कि एक रस्सीनुमा रेशा बन जाता है और इस रस्सी पर नियमित सर्पिलाकार रूप में सिर की घुंडियां उभरी होती हैं।

मायोसिन एक एटीपीएज़ का काम भी करता है। यानी एटीपी का जल विघटन करके एडीपी और फॉस्फेट

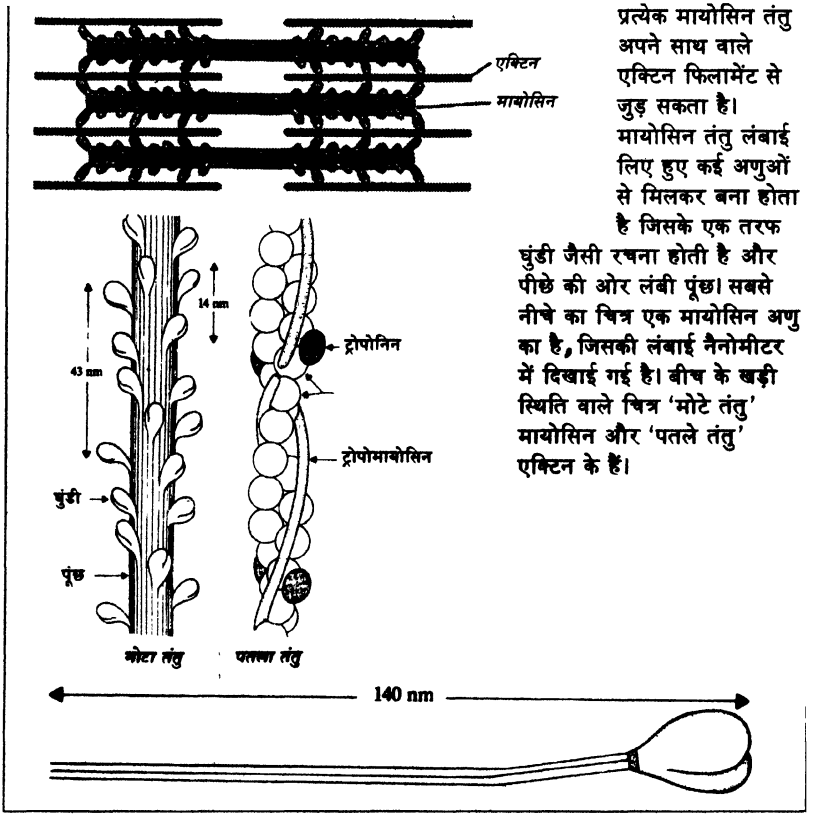

प्रत्येक मायोसिन तंतु अपने साथ वाले एक्टिन फिलामेंट से जुड़ सकता है। मायोसिन तंतु लंबाई लिए हुए कई अणुओं से मिलकर बना होता है जिसके एक तरफ घुंडी जैसी रचना होती है और पीछे की ओर लंबी पूंछ। सबसे नीचे का चित्र एक मायोसिन अणु का है, जिसकी लंबाई नैनोमीटर में दिखाई गई है। बीच के खड़ी स्थिति वाले चित्र 'मोटे तंतु' मायोसिन और 'पतले तंतु' एक्टिन के हैं।

समूह में बदल देता है। मगर मायोसिन-एटीपीएज़ की दो विशेषताएं होती हैं। यह एटीपी को तभी विघटित करता है जब कैल्शियम आयन (Ca^{++}) मौजूद हों। इसकी दूसरी विशेषता यह होती है कि एटीपी को तोड़ने से पूर्व यह उसे घुण्डीनुमा सिर से जोड़ लेता है और विघटन के बाद बने एडीपी व फॉस्फेट समूह को तुरंत अलग नहीं करता।

एक्टिन तंतु के प्रोटीन अणु

पतला तंतु एक्टिन नाम के प्रोटीन से बना होता है। इसमें प्रोटीन की दो शृंखलाएं एक दूसरे पर लिपटी होती हैं। एक्टिन प्रोटीन पर ऐसे स्थान मौजूद होते हैं जो मायोसिन के साथ जुड़ सकते हैं।

मगर एक्टिन तंतु के साथ ट्रोपोनीन व ट्रोपोमायसिन नाम के दो अन्य

मांसपेशी का सिकुड़ना: आराम के समय मांसपेशियों में मायोसिन की घुंडियां एक्टिन से लगी नहीं होतीं, उससे अलग होती हैं। मायोसिन की घुंडियां स्वतंत्र रूप से काम करती हैं। यहां प्रक्रिया को देखने के लिए दो घुंडियों का सहारा लिया जा रहा है जो काली हैं और दोनों तरप मौजूद हैं।

जब तंत्रिकाओं के द्वारा सिकुड़न का संदेश आता है कई प्रक्रियाएं शुरु हो जाती हैं। इसी के साथ 1 मायोसिन की घुंडी को एटीपी का अणु मिलता है, घुंडी मायोसिन एन्ज़ाइम की तरह काम करती है और एटीपी को जल अपघटित कर एडीपी और फास्फेट ग्रुप में टूटने की क्रिया को उत्प्रेरित करती है। इस टूटन से जो ऊर्जा मिलती है उसकी वजह से यह घुंडी तनाव में आ जाती है (चित्र मे घुंडी की तनाव की अवस्था दिखाई गई है)। 2. यह घुंडी एक्टिन के सक्रिय हिस्सो से जुड़ जाती है। 3. ऊर्जा समाप्त हो जाती है और घुंडी अपनी सामान्य अवस्था की ओ मुड़ जाती है चूंकि वो एक्टिन से जुड़ी हुई है इसलिए घुंडी के मुड़ने की दिशा में एक्टिन भी आगे बढ़ जाता है। और एक्टिन तंतुओं के बीच की खाली जगह कम हो जाती है। इसी समय एक और बात होती है वो यह कि एडीपी और फास्फेट ग्रुप घुंडी से अलग हो जाता है। 1 अलग हुई घुंडी को फिर से एटीपी मिलता है और 5 वो फिर से तनाव मे आ जाती है। और पहले 1 से लेकर 3 तक की प्रक्रियाएं फिर से दोहराई जाती है।

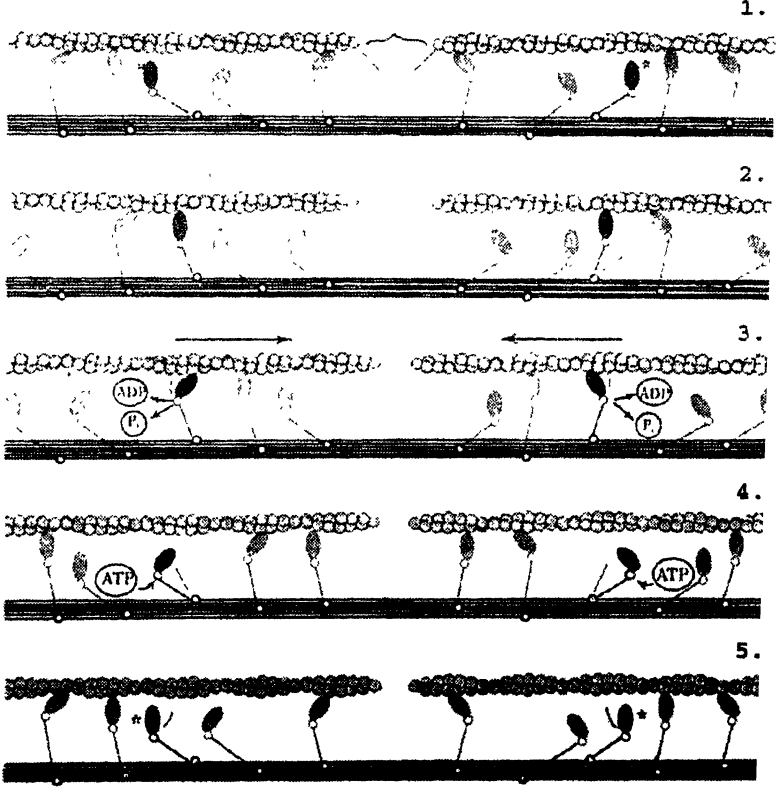

प्रोटीन भी गुंथे होते हैं। ये कुछ इस तरह गुंथे होते हैं कि एक्टिन के सक्रिय बिन्दु मायोसिन तंतु के संपर्क में नहीं आ पाते।

यानी सामान्य अवस्था में एक्टिन व मायोसिन तंतु एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। अब मान लीजिए तंत्रिका तंत्र के ज़रिए संकुचन का संदेश आता है। यह संदेश कुछ इस तरह का होता है कि तंतुओं के इर्द-गिर्द कैल्शियम आयन की सांद्रता बढ़ने लगती है।

कैल्शियम आयन की सांद्रता बढ़ते ही कई क्रियाएं शुरू हो जाती हैं।

1. मायोसिन एटीपीएज़ सक्रिय हो जाता है; यह एटीपी को घुंडियों से जोड़कर उसे एडीपी व फॉस्फेट में तब्दील कर देता है (मगर छोड़ता नहीं है)।

इस क्रिया में से जो ऊर्जा निकलती है वह व्यर्थ नहीं जाती। इसी ऊर्जा की वजह से मायोसिन की पूंछ की जमावट (Conformation) थोड़ी बदल जाती है। इस तब्दीली की वजह से पूंछ तनाव में रहती है।

2. कैल्शियम आयन एक्टिन तंतुओं के साथ जुड़े ट्रोपोनीन व ट्रोपोमायसिन घटकों से जुड़ जाता है। इस जुड़ाव का परिणाम यह होता है कि ट्रोपोनीन व ट्रोपोमायसिन की जमावट में बदलाव आता है। ये तंतु में अंदर की ओर चले जाते हैं तथा एक्टिन के सक्रिय बिन्दु सामने उभर आते हैं।

3. मायोसिन व एक्टिन के बीच एक सेतु बन जाता है, जो पहले संभव नहीं था। यह सेतु एडीपी व फॉस्फेट समूह के ज़रिए बनता है।

4. यह तो हम जानते ही हैं कि मायोसिन के तंतु तनाव की स्थिति में हैं (जैसे कि कमान तनी हुई हो)। इस तनाव से मुक्ति पाने के लिए तन्तु वापस अपनी पूर्व स्थिति में आना चाहते हैं। पूर्व स्थिति में आने के दौरान घुंडी को एक झटका लगता है और वह अपनी मौजूदा स्थिति से 45° के कोण तक झुक जाती है। ज़ाहिर है कि घुंडी की गति के साथ-साथ एक्टिन तंतु को भी सरकना होगा। तो एक्टिन तंतु सरककर थोड़ा अंदर चला जाता है। लिहाज़ा हो गया थोड़ा-सा संकुचन।

5. इसी के साथ मायोसिन की घुंडी से जुड़े एडीपी व फॉस्फेट समूह भी मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार संकुचन का एक चक्र पूरा होता है।

एक सेकंड की सिकुड़न के दौरान मायोसिन की हर घुंडी को पांच से दस बार जुड़ने, वापस आने और जुड़ने के चक्कर से गुज़रना पड़ता है। मायोसिन के एक तंतु में करीब पांच सौ घुंडियां होती हैं, और सब स्वतंत्र रूप से यह कार्य करती हैं।

सुशील जोशी: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध। पर्यावरण एवं विज्ञान लेखन में सक्रिय।

साकार होती कल्पनाएं

कमलेश चन्द्र जोशी

इस नाट्य-गतिविधि में बच्चे संवाद गढ़ना, सीन डिज़ाइन करना खुद सीखते हुए अपनी कल्पना को मूर्त रूप दे रहे हैं।

हमारे गतिविधि-केन्द्र में एक दिन कल्पना मुझसे शिकायती लहज़े में बोली – "आप नाटक तो करवाते नहीं, खेल करवाते रहते हो।" कल्पना हमारे केन्द्र में रविवार को होने वाली नाट्य-गतिविधियों में शामिल होती है। इन नाट्य-गतिविधियों में मेरे साथ रजनीश भी होता है। रविवार को यहां आने वाले बच्चों की औसत उम्र 8-11 वर्ष है। ये बच्चे हर रविवार को ढाई-तीन घंटे हमारे साथ गुज़ारते हैं। वे नाटक बनाना चाहते हैं, लेकिन शायद उन्हें नहीं मालूम कि नाटक की शुरुआत

कुछ खेलों से होती है – इसलिए कल्पना मुझसे ऐसा कह रही थी।

शुरूआत एक 'परिचय खेल' से होती है। परिचय खेल के अन्तर्गत बच्चों को अपना नाम अभिनय करते हुए बताना होता है। कोई हंसकर बताता है, तो कोई गुस्सा होकर, चिल्लाकर या शर्माते हुए अपना नाम बताता है। इसके बाद 'ताली के साथ चलना' होता है। जब तक ताली बजती है बच्चों को चलना होता है और ताली की आवाज़ रुकते ही बच्चों को रुक जाना होता है। इस गतिविधि के बाद 'गिनती के साथ शारीरिक क्रियाएं' हैं। जैसे – 'एक' बोलने पर बच्चों को बैठना है; 'दो' बोलते ही बच्चों को खड़े होना है; 'तीन' पर उनको हंसना है; 'चार' पर उनको रोना है; 'पांच' बोलते ही बच्चों को एक जगह मूर्ति के रूप में खड़े होना है। इस तरह गिनती के साथ चलने वाली गतिविधियों में बहुत-सी क्रियाएं करनी होती हैं।

ताली के साथ चलने वाली गतिविधियों में रजनीश ताली बजाता है, कभी धीरे-धीरे तो कभी तेज़-तेज़। इस प्रक्रिया में बच्चों को ताली की लय के साथ चलना होता है, साथ ही इस बात का ख्याल भी रखना होता है कि ताली रुकते ही उन्हें स्थिर हो जाना है। इस गतिविधि की अगली कड़ी में रजनीश गिनतियों को भी जोड़ देता है। बच्चे ताली की लय के

साथ चल रहे हैं .... लेकिन जैसे ही 'एक' बोला गया बच्चे उसी स्थान पर एकदम बैठ जाते हैं, 'दो' बोलते ही खड़े हो जाते हैं ..... इस तरह आगे गिनतियां और क्रियाएं जुड़ती रहती हैं। गिनती के अनुसार ही बच्चों को पहले दिए हुए निर्देश याद रखने पड़ते हैं क्योंकि उन निर्देशों का पालन करते हुए उन्हें उस तरह की शारीरिक क्रिया करनी पड़ती है।

अब सवाल यह उठता है कि ये गतिविधियां बच्चों के लिए नाटक बनाने में किस तरह सहायक साबित होंगी? यूं देखने में तो ये गतिविधिया खेल ही लगती हैं। लेकिन इनमें बच्चों में ध्यान देने वाली प्रवृत्ति का विकास हो रहा है । शुरुआत में दिए गए निर्देशों को याद रखते हुए उन्हें उस तरह की क्रिया करनी पड़ रही है। ये गतिविधियां बच्चों को एक चरित्र की कल्पना करने का मौका देती हैं। जैसे 'पांच' बोलने पर उन्हें 'मूर्ति' बनना होता है। मूर्ति बना बच्चा कृष्ण, हनुमान, मास्टरजी, सब्ज़ीवाला, चायवाला कुछ भी हो सकता है। शुरुआत में ये देखा गया है कि बच्चे मूर्ति के माने हनुमान, कृष्ण, राधा ही समझते हैं। लेकिन धीरे-धीरे उनका यह भ्रम टूटता है और वे अपने आसपास के चरित्रों का निर्माण करने लगते हैं। इस तरह स्वयं के द्वारा चरित्रों का निर्माण बच्चों के स्तर पर नाटक खोजने की प्रक्रिया में पहला कदम है।

आगे की नाट्य गतिविधियों में रजनीश बच्चों को एक गोले में बैठाता है। सब बच्चों को एक-एक नंबर (एक, दो, तीन, चार .... आदि) दिया जाता है तथा गोले के बीच में एक बच्चे को बैठाया जाता है। रजनीश जिस नंबर वाले बच्चे को बुलाता है, उसे गोले के भीतर आकर, बीच में बैठे हुए बच्चे को कोई चरित्र या पात्र बनाना पड़ता है। जैसे– दुकानदार, मोची, मास्टरजी, झूलेवाला, चायवाला या कुछ और भी हो सकता है। और इस चायवाले या दूधवाले या मोची बने बीच वाले बच्चे के साथ 4-5 मिनट तक वैसी ही बातचीत करनी है जैसी कि आमतौर पर लोग उनके साथ करते हैं।

इस गतिविधि में बच्चे को अपने आप संवाद सोचने पड़ते हैं। अपने आसपास के लोगों की कई बातें याद करनी पड़ती हैं – सब्ज़ी वाले के वहां लोग किस तरह की बात करते हैं? किस तरह के एक्शन से सब्ज़ी मांगते हैं? किस तरह मोल-भाव करके दाम कम कराते हैं?

इस गतिविधि के दौरान अंजू ने लक्ष्मी को पड़ोस की कपड़ा सिलने वाली बनाया। अंजू व लक्ष्मी का एक संवाद पेश है:–

अंजू – "बहन जी, ये कपड़े सिल देना, बच्चों के हैं।"

लक्ष्मी – "कब तक चाहिए?"

अंजू – "इतवार तक दे देना, हमें शादी में जाना है।"

लक्ष्मी – "ठीक है।"

अंजू – "कितने पैसे हुए?"

लक्ष्मी – "पचास रुपए दे देना।"

अंजू – "बहन जी, ये तो ज़्यादा हैं। चालीस लगते हैं। अच्छा, बचा हुआ कपड़ा वापस कर देना।"

लक्ष्मी – "कपड़ा बचता कहां है?"

अंजू – "एक रूमाल ही बना देती। अच्छा, मैं चलती हूं। घर में ढेर सारा काम पड़ा है। जल्दी सिल देना।"

उपरोक्त संवाद से हमें पता चलता है कि बच्चों को संवाद गढ़ते हुए अपने आसपास के अनुभवों से मन-ही-मन दोबारा गुज़रना पड़ता है, अपने पास-पड़ोस की बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इस तरह बच्चों की संवाद बोलने की स्वतंत्र मौखिक अभिव्यक्ति की शुरुआत यहां से होती है। इस गतिविधि में दो लोगों की आपसी बातचीत होती है। आगे चलकर यह गतिविधि समूह के रूप में भी होती है।

आगे की गतिविधियों में रजनीश

कहता है कि चलो कुछ बच्चे अपनी क्लास का सीन (दृश्य) बनाएं तथा कुछ बच्चे अपने घर का सीन (दृश्य) बनाएं। इस तरह रजनीश बच्चों की क्षमता देखते हुए समूह बना देता है। फिर बच्चे अपने-अपने समूह में बैठकर अपने-अपने सीन के बारे में सोचते हैं। कौन क्या बनेगा? क्या-क्या बातें होंगी? इन बच्चों के बनाए हुए 'सीन' में देखें बच्चे किस-किस तरह के सीन चुनते हैं? क्या-क्या बातें करते हैं?

अंजू, माया, कल्पना, रोशन मिलकर एक परिवार बनाते हैं। यहां अंजू मां बनी है, कल्पना पिता। रोशन और माया उनके बच्चे बने हैं। इस सीन में वे लोग खुद संवाद जोड़ते हैं कि अंजू दीपावली में बच्चों के कपड़े बनवाने के लिए कल्पना से पैसे मांगेगी। तब कल्पना कहेगी पिछले महीने भी तो दिए थे। इस पर अंजू कहेगी वो तो खर्च हो गए। फिर कल्पना, अपने बच्चों से परेशान रहेगी कि ये पढ़ते नहीं हैं। इस तरह पति-पत्नी में तना-तनी चलती रहेगी।

उधर दूसरे समूह में लक्ष्मी, सावित्री, राजकुमारी, रजनी परिवार बने हैं। इनका अपने पड़ोसियों से कूड़ा फेंकने की बात पर झगड़ा हो जाता है। इस झगड़े के बाद दोनों परिवार (अंजू व लक्ष्मी का) अपने बच्चों को एक-दूसरे के साथ खेलने से मना कर देते हैं। लेकिन आगे के सीन में स्कूल की टीचर उन बच्चों को आपस में मिला देती है।

ऐसे ही क्लास का सीन तैयार होता है – वहां दिखाया जाता है कि टीचर कैसे पढ़ाते हैं, बच्चे कैसे शैतानी करते हैं?

एक सीन में सुनीता, ज़ीनत, बेबी बस्ती की औरतें बनती हैं। उनके सीन में नल से पानी भरते हुए बस्ती में प्रधान की बातें, पुलिस कैसे झुग्गियां बनवाती है तथा कैसे पुलिस को खुश किया जाता है. . . आदि बातें होती हैं।

इस तरह सभी सीनों को जोड़कर और उन्हें सुधारकर एक कहानी का रूप दिया जाता है, जो अपने-आप बनाई हुई कहानी है। फिर बच्चे अपने-अपने सीन को डिज़ाइन करते हैं। सीन डिज़ाइन करते हुए उन्हें यह भी ध्यान रखना है कि वे सीन को डिज़ाइन करने में जिन चीज़ों का इस्तेमाल कर रहे हैं, (जैसे – गिलास, किताब, साबुन, पेन, कप, आदि) वे सभी चीज़ें बाहर बैठे हुए दर्शकों को दिखाई देनी चाहिए। इसके अलावा उन्हें इस तरह उठना-बैठना है कि उनकी पीठ दर्शकों के सामने न आए। संवाद ऊंची आवाज़ में बोलना है। इसका अभ्यास चलता रहता है।

इन सब चीज़ों को ध्यान में रखते हुए बच्चे खुद ही सोच रहे हैं कि किताब को कहां रखें, साबुन कहां पर होना चाहिए, क्लास के सीन में बच्चे

कैसे बैठेंगे, उनका मुंह किधर होगा, घर में टी.वी. देखते हुए कैसे बैठेंगे, टी.वी. कहां रखेंगे? ये सभी बातें उनके सामने आती हैं। इन सभी बातों का हल वे स्वयं निकालते हैं। कुल मिलाकर बच्चे स्वयं ही सीन डिज़ाइन करना सीख रहे हैं, अपनी कल्पना को मूर्त रूप दे रहे हैं।

अंत में इन सभी बातों को मिलाकर कहानी को काट-छांटकर तथा इसके निरन्तर अभ्यास से नाटक तैयार होता है, जो बच्चों की अपनी मौलिक कृति है। यह उनके आसपास की दुनिया का प्रतिबिम्ब है, जिसे वे अपने अभिनय से चित्रित करते हैं।

कमलेश चन्द्र जोशी बच्चों के साथ विविध गतिविधियां करते और करवाते हैं। फिलहाल लखनऊ की नालंदा संस्था में सक्रिय।

किशोरी स्वास्थ्य से जुड़े सवालों को समेटती किताब। किताब की ज़रूरत महसूस हुई देवास ज़िले के कुछ गांवों में किशोरी स्वास्थ्य को लेकर चल रहे एकलव्य के एक कार्यक्रम में उठ रहे सवालों से। किताब का पहला भाग किशोरावस्था और माहवारी पर केंद्रित है। दूसरा भाग इन सवालो से जुड़े सामाजिक पहलुओं को गहराई से टटोलता है।

बेटी करे सवाल: मूल्य 25 रुपए (रजिस्टर्ड डाक से मंगाने के लिए 12 रुपए और जोडें

राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। संपर्क करें – एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016. पांच से अधिक प्रतियां मंगवाने पर डाकखर्च हम वहन करेंगे।

वह आदमी जो चमत्कार कर सकता था

एच. जी. वेल्स

इस कहानी की पहली किश्त में आपने पढ़ा कि चमत्कारों पर एक गहमा-गहमी भरी बहस के दौरान कैसे फरनैन्डिस को अचानक अपनी चमत्कारिक इच्छा शक्ति का अहसास हुआ। इस अद्‌भुत खोज से प्रयोग करते हुए अचानक उसकी भिड़न्त पुलिस कॉन्स्टेबल विंच से हो गई। इस बौखलाहट में कि कहीं उसकी शक्ति के बारे में सबको पता न चल जाए फरनैन्डिस ने विंच को चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग करके जहन्नुम भेज दिया परन्तु फिर दया उमड़ आने पर सैन फ्रैन्सिस्को रवाना कर दिया। विंच के बारे में सोचते हुए ऊहापोह में फंसा फरनैन्डिस चर्च में मिस्टर मेडिग के पास जा पहुंचा और उसे अपना किस्सा बयान कर दिया। अब आगे पढ़िए।

फरनैन्डिस पहले विंच का मामला हल करना चाहता था, लेकिन मेडिग उसे छोड़ ही नहीं रहा था। लगभग एक दर्जन छोटे-छोटे घरेलू से प्रयोग करने के बाद उन दोनों में और जोश जागने लगा। उनकी

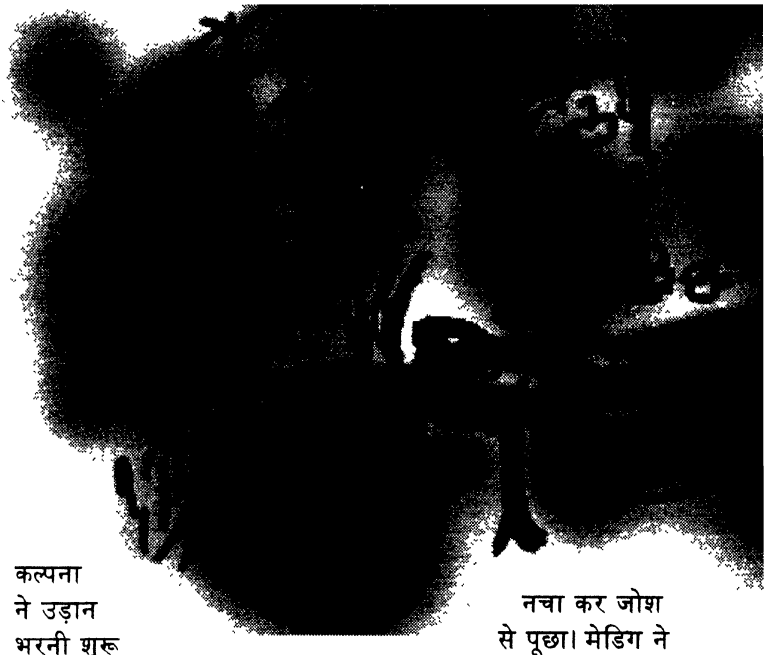

कल्पना ने उड़ान भरनी शुरू की और उनकी महत्वाकांक्षा और बढ़ने लगी। उनका पहला साहसिक कार्य भूख, और मेडिग की सेविका मिस मैरी की उपेक्षा एवं लापरवाही से प्रेरित हुआ। उन दोनों के लिए जो भोजन परोसा गया था वह एकदम नीरस लग रहा था, जिसे देख कर खाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। मेडिग को भोजन से ज़्यादा तो अफसोस हो रहा था अपनी सेविका की नालायकी पर। तभी फरनैन्डिस को लगा कि उसके सामने एक अवसर है। "अगर आप बुरा न मानें तो, बताइए आप क्या खाना पसंद करेंगे?" उसने हाथ नचा कर जोश से पूछा। मेडिग ने अपनी पसन्द की उम्दा-से-उम्दा चीज़ें बता दीं, जो तुरंत हाज़िर हो गईं। वे दोनों देर तक खाना खाते रहे और बातें करते रहे। फरनैन्डिस का चेहरा तो अब आगे आने वाले करिश्मों के बारे में सोच कर जगमगाने लगा था। वह बोला, "अब तो शायद मैं आपकी घरेलू तौर पर भी मदद कर सकता हूं।"

"मैं ठीक से समझा नहीं," मेडिग मदिरा का गिलास उठाते हुए बोला। फरनैन्डिस ने कहा, "मैं सोच रहा था कि शायद मेरा चमत्कार मिस मैरी के साथ भी काम करे – मेरा मतलब है उसे एक अच्छी

सेविका बनाने के लिए।"

मेडिग ने गिलास नीचे रख दिया। वे थोड़ा शंकित लग रहे थे, "उसे दखलअंदाज़ी बिल्कुल पसंद नहीं है, और इस वक्त रात के ग्यारह बज रहे हैं। वो सो रही होगी, आप हर पहलू से सोचिए।"

फरनैन्डिस ने इन आपत्तियों पर विचार किया, फिर कहा, "मैं नहीं सोचता कि ऐसा उसके सोते हुए नहीं हो सकता।"

मेडिग ने उसके विचार का कुछ विरोध तो किया, लेकिन अंततः राज़ी हो गए। फरनैन्डिस ने आज्ञा जारी कर दी, और फिर थोड़ी देर बेचैनी के साथ वे दोनों खाना खाते रहे। मेडिग अगले दिन अपनी सेविका में दिखने वाले बदलावों के बारे में इतनी लम्बी चौड़ी अपेक्षाएं कर रहे थे कि फरनैन्डिस को भी ये ज़्यादती और जल्दबाज़ी भरी लगीं। तभी ऊपर की मंज़िल से कुछ अजीब-सी आवाज़ें आने लगीं। उन दोनों ने आंखों ही आंखों में एक दूसरे से कुछ पूछा, और फिर मेडिग शीघ्रता से ऊपर भागे। फरनैन्डिस ने उन्हें मिस मैरी को पुकारते और उनके कदमों को उसकी ओर जाते सुना।

एक ही मिनट में मेडिग जब लौटे तो लगा मानों वे उड़ रहे हों। उनका चेहरा चमक रहा था। "गज़ब!" उन्होंने कहा, "मैं तो हिल गया हूं!"

वे कालीन पर तेज़ी से इधर उधर चलने लगे। "दरवाज़े की दरार से मैंने पश्चाताप का दृश्य देखा – बहुत ही हृदयस्पर्शी पश्चाताप। बेचारी औरत! कैसा अद्‌भुत बदलाव! वह जाग गई थी। शायद अपने ट्रंक में छिपा कर रखी शराब की बोतल तोड़ने के लिए बिस्तर से उठ गई थी। खुदा से माफी मांग रही थी। लेकिन इस घटना ने हमारे समक्ष बहुत ही आश्चर्यजनक संभावनाओं का भंडार खोल दिया है। अगर हम इस औरत में चमत्कारिक बदलाव कर सकते हैं तो..."

"लगता तो ऐसा ही है," फरनैन्डिस ने कहा, "लेकिन विंच...?"

"पूरी तरह अपार और असीम।" और फिर विंच की समस्या को

दरकिनार करते हुए मेडिग ने बहुत से शानदार प्रस्तावों की पूरी शृंखला ही खोलनी शुरू कर दी। हर क्षण उनके दिमाग में और भी हैरतअंगेज़ प्रस्ताव आ रहे थे। ये सब प्रस्ताव परोपकार की भावना से प्रेरित थे, उस तरह का परोपकार जो पेट भरा होने पर सूझता है। बेचारे विंच की समस्या बिना हल हुए ही रह गई। आश्चर्यजनक परिवर्तन होने शुरू हुए। पौ फटने से पूर्व के अंधेरे में आकाश में चमकता शांत चन्द्रमा उन दोनों को कड़कड़ाती ठंड में शहर की गलियों की परिक्रमा करते देख रहा था। हर्षोन्माद में मेडिग अपने हाथों-पैरों पर भी काबू नहीं रख पा रहे थे, और फरनैन्डिस में से जोश फूटा पड़ रहा था, और अब तो वह खुलकर अपनी शक्ति का इज़हार कर रहा था। उन्होंने शहर के सभी शराबियों को सुधार कर सारी शराब को पानी में बदल दिया था, रेल यातायात को सुधरा हुआ रूप दे दिया था, पादरी के मस्से को ठीक कर दिया था, कस्बे के एक ओर के पुराने बड़े दलदल को सुखा दिया था, पहाड़ी की मिट्टी को सुधार दिया था। अब वो देखने जा रहे थे कि साऊथ ब्रिज के टूटे हुए घाट को कैसे ठीक किया जा सकता है। मेडिग ने हर्ष से कहा, "इस जगह की तो कल शक्ल ही बदली हुई होगी। सभी लोग कितने हैरान, और कितने अहसानमन्द होंगे!" उसी वक्त चर्च की घड़ी में तीन का घंटा बजा।

फरनैन्डिस ने कहा, "तीन बज रहे हैं, मुझे वापस जाना चाहिए, सुबह आठ बजे काम पर जाना है।"

"हमने तो अभी शुरुआत ही की है," मेडिग ने बहुत ही मीठे स्वर में कहा, "हम जो भलाई कर रहे हैं उसके बारे में सोचो – कल जब लोग जागेंगे ...."

"लेकिन..." फरनैन्डिस ने कहा। मेडिग ने अचानक उसकी बांह पकड़ ली। उनकी आंखें चमक रही थीं और उनमें एक जुनून-सा नज़र आ रहा था। उन्होंने आकाश में चांद की ओर इशारा करते हुए कहा, "ऐसा करो, इसे रोक दो।" फरनैन्डिस ने चांद की ओर देखा, और थोड़ा ठहर कर बोला, "ये तो कुछ ज़्यादा ही होगा।"

"क्यों नहीं," मेडिग बोले, "बेशक, यह तो नहीं रुकता। तुम पृथ्वी का घूमना रोक दो। समय रुक जाएगा। ऐसा तो नहीं है कि हम कोई नुकसान कर रहे हों।"

"अम..हं...," फरनैन्डिस बुदबुदाया, "कोशिश करता हूं।"

उसने अपने कोट के बटन बंद किए और अपनी शक्ति में जितना

विश्वास बटोर सकता था उतने विश्वास के साथ पृथ्वी को संबोधित करते हुए कहा, "घूमना बंद कर दो।"

और वह पूरा का पूरा असंयत हो कर एक मिनट में दर्जनों मील की रफ्तार से हवा में उड़ रहा था। प्रति सेकन्ड वह अनगिनत चक्कर खा रहा था, लेकिन इसके बावजूद भी उसने सोचा 'विचार भी क्या गज़ब है, कभी इतना धीरे चलता है जैसे बहता हुआ कोलतार, और कभी प्रकाश की तीव्रता से।' उसने पल भर में सोचा और इच्छा की, "मैं सुरक्षित नीचे आ जाऊं। और चाहे जो कुछ भी हो लेकिन मैं ठीक-ठाक सुरक्षित नीचे आ जाऊं।"

उसने यह इच्छा भी सही वक्त पर कर ली थी, क्योंकि उसके कपड़े इतनी तेज़ी से उड़ने की गर्मी से झुलसने लगे थे। वह प्रबल शक्ति से नीचे आ कर गिरा – नरम, मानों ताज़ी खोदी हुई मिट्टी पर, और उसे ज़रा भी चोट नहीं आई। धातु और इमारती मलबे का एक विशाल रेला, जो कि बहुत कुछ बाज़ार के बीच खड़े घण्टाघर-सा लग रहा था, उसके करीब धराशाई हुआ। फिर वापस हवा में उछला और ठीक उसी के ऊपर ईंटें, पत्थर, रोड़ी हवा में इस तरह उड़े जैसे कि बम फटा हो। तेज़ी से लुढ़कती हुई एक गाय एक बड़े से पत्थर के टुकड़े से टकराई और अण्डे की तरह फूट गई। तभी इतनी ज़ोर का धमाका हुआ कि उसकी ज़िन्दगी के अब तक के बड़े-से-बड़े धमाके उसके सामने रेत के गिरने की आवाज़ के समान थे। उसके बाद धमाकों की झड़ी-सी लग गई लेकिन उनकी तीव्रता कम होती गई। एक विशाल हवा पृथ्वी और आकाश के बीच इतनी भीषण रफ्तार से गरजती हुई चल रही थी कि ऊपर देखने के लिए वह मुश्किल से अपना सिर उठा पा रहा था। कुछ समय तक तो उसे ऐसा महसूस होता रहा जैसे उसकी सांस ही रुक गई हो और उसके लिए यह देख या समझ पाना भी संभव नहीं हो पा रहा था कि वह कहां है और ये सब क्या हो गया है। सबसे पहले तो उसने अपने सिर को छुआ और तसल्ली की कि उसके सिर पर बाल अभी भी बरकरार हैं।

"हे भगवान," हवा की तेज़ी के कारण उसकी आवाज़ ही नहीं निकल पा रही थी, "मैं तो बाल-बाल बच गया। क्या गलती हो गई? आंधी, तूफान और बवंडर! और एक क्षण पहले इतनी सुहानी रात थी। मेडिग ने मुझसे यह क्या करवाया? क्या भयंकर हवा है। अगर मैं यों ही बेवकूफियां करता चला गया तो ज़रूर ही कोई बड़ी

दुर्घटना हो जाएगी।"

"मेडिग कहां है? सब कुछ किस तरह अस्त-व्यस्त हुआ है।" उसने अपने बेतहाशा उड़ते हुए कोट को सम्भालते हुए इधर-उधर देखने की कोशिश की। सभी कुछ वास्तव में बड़ा अजीबोगरीब लग रहा था। "आकाश अब ठीक है, कम-से-कम," फरनैन्डिस ने कहा। "सिर्फ यही है जो कुछ ठीक लग रहा है। लेकिन लगता है कि एक बड़ा तूफान आने वाला है। मगर सिर के ऊपर चांद भी निकला है। बिल्कुल वैसा ही, जैसा कि कुछ देर पहले था। इतना चमकदार मानों दोपहर हो। लेकिन बाकी सब कुछ – कस्बा कहां है? और भी सब कुछ... कहां है? और यह ज़ोरों की हवा क्यों चलने लगी? मैंने तो इसे आज्ञा नहीं दी थी।"

फरनैन्डिस अपने पैरों पर खड़ा होने का व्यर्थ प्रयास करने के बाद, अपने चारों हाथों पैरों पर घोड़ा बने टिका रहा। उसने चांदनी रात

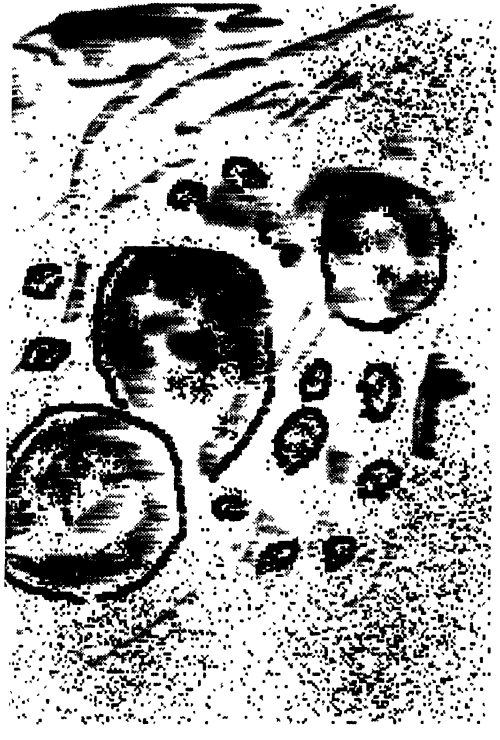

में हवा की दिशा में देखने का प्रयत्न किया, उसका कोट उसके सिर के ऊपर से उड़ रहा था। "कुछ गंभीर रूप से गलत हो गया है। भगवान जाने वो क्या है," वह मन ही मन सोच रहा था।

दूर-दूर तक रेत के बादल की सफेद चौंध में जो सनसनाती हुई आंधी के आगे आगे दौड़ रहा था, कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था, सिवाए मिट्टी, रेत और टूटे-फूटे मलबे के ढेरों के। कोई पेड़, कोई मकान, कोई भी जानी पहचानी आकृति नहीं थी, सिर्फ विनाश की लीला थी, जो अंततः अन्धकार में तेज़ी से उठते हुए तूफान, बिजली और गर्जन के नीचे लुप्त होती जा रही थी। फरनैन्डिस के करीब चौंधियाते प्रकाश में कुछ चीज़ थी जो शायद पहले एक नीम का पेड़ रही होगी, अब जड़ से शाखाओं तक चूर-चूर हुई माचिस की तीलियों और खपच्चियों का ढेर मात्र थी। उसके सामने लोहे के सरियों का मुड़ा-तुड़ा ढांचा-सा था, जो मलबे के ढेर में से ऊपर उठा हुआ था, शायद कभी एक पुल रहा होगा।

ऐसा हुआ कि जब फरनैन्डिस ने अपनी धुरी पर घूमती हुई ठोस पृथ्वी को रोका, तब उसकी सतह पर मौजूद मामूली चलती फिरती, हिल सकने वाली चीज़ों के बारे में कुछ नहीं कहा। पृथ्वी अपनी धुरी पर इतनी तेज़ी से घूमती है कि भूमध्य-रेखा पर उसकी रफ्तार एक घन्टे में हज़ार मील से भी ज़्यादा होती है, तथा उस अक्षांश पर, जिस पर ये कस्बा बसा था, रफ्तार लगभग इसकी आधी होती है। जब

पृथ्वी रुकी तब फरनैन्डिस को, सभी लोगों, सभी चीज़ों यानी कि उस पूरे कस्बे को, नौ मील प्रति मिनट की गति से आगे की ओर भारी धक्का लगा। अगर उन सबको तोप में से दागा गया होता तब जो धक्का लगता वो भी इसके सामने मामूली होता। और हर इंसान, हर जीवित प्राणी, हर घर, हर पेड़, तमाम दुनिया जिसके हम आदी हैं – इस चोट को खाने से टूट-टूट कर, चूर-चूर हो कर नष्ट हो गई। बस यही हुआ।

खैर इन चीज़ों को तो फरनैन्डिस पूरी तरह समझ नहीं पाया था। लेकिन उसने जान लिया था कि उसका चमत्कार असफल हो गया है, और चमत्कारों के लिए उसके मन में गहरी वितृष्णा हो गई थी। अब वह अन्धकार में था क्योंकि बादलों ने इकट्ठा हो कर चांद को ढक लिया था, और हवा में वर्षा की धाराएं और ओले आपस में प्रेतों के समान खतरनाक संघर्ष कर रहे थे। हवा और पानी की गर्जन ने पृथ्वी और आकाश को दहला दिया था। अपने हाथ की आड़ में से झांकते हुए बिजली की चमक में, धूल और ओलों के बीच से उसने देखा पानी की एक विशाल दीवार उसकी ओर चली आ रही है।

"मेडिग!" इस प्रलयकारी तूफान में फरनैन्डिस अपनी दुर्बल आवाज़ में चीखा, "मेडिग, कहां हो!"

"ठहरो," वह उस बढ़ते हुए पानी पर चिल्लाया, "भगवान के लिए रुक जाओ!"

"एक क्षण के लिए रुक जाओ," उसने बिजली और गर्जन से कहा, "जिससे मैं कुछ सोच सकूं।... अब मुझे क्या-क्या करना चाहिए? हे भगवान मैं क्या करूं? काश, मेडिग यहां होता।"

"हां, समझा," फरनैन्डिस बोला, "और ईश्वर के नाम पर इस बार कोई गलती नहीं होनी चाहिए।"

वह हवा के विरुद्ध चारों हाथों पैरों पर झुका रहा, पूरे मनोयोग से सब कुछ ठीक होने की कामना करते हुए। फिर उसने कहा, "मैं जो आज्ञा दूं, जब तक मैं 'समाप्त' न कहूं तब तक पूरी न हो। काश मैंने ऐसा पहले सोचा होता।"

उस बवंडर में अपनी आवाज़ को ऊंची, और ऊंची उठाते हुए, स्वयं को सुन लेने की व्यर्थ चाह के साथ वह चिल्लाया, "अब आगे मैंने जो अभी कहा है, उसका ध्यान रखा जाए। प्रथम तो यह कि मैं जो कहूं, जब वो पूरा हो जाए तब मेरी चमत्कारिक शक्ति खत्म हो जाए। मेरी इच्छा-शक्ति अन्य लोगों की इच्छा की तरह हो जाए, और ये

सब खतरनाक चमत्कार रुक जाएं। मुझे ये अच्छे नहीं लगते। अच्छा होता कि मैंने इन्हें न किया होता – यह पहली बात हुई। और दूसरी यह है कि मैं चमत्कार शुरू होने के पहले की स्थिति में पहुंच जाऊं। हरेक चीज़ वैसी ही हो जैसी लैम्प उल्टा होने से पहले थी। यह एक बड़ा काम है, लेकिन अन्तिम है। समझ गए? और कोई चमत्कार नहीं, हर चीज़ जैसी पहले थी – मैं वापस कैफेटेरिया में, अपने चाय के प्याले के साथ। बस यही!"

आंखे मूंद कर, मुट्ठी भींच कर उसने कहा, "समाप्त।"

सब कुछ एकदम स्थिर हो गया। उसने पाया कि वह सीधा खड़ा है।

"तो आप ऐसा कहते हैं," एक आवाज़ आई।

उसने अपनी आंखें खोलीं। वह कैफेटेरिया में चमत्कारों के बारे में बीमिश से बहस कर रहा था। उसे महसूस हुआ कि जैसे कोई बहुत बड़ी चीज़ वो उसी क्षण भूल गया था, लेकिन यह भाव भी क्षण भर में गायब हो गया।

उसकी चमत्कारिक शक्ति को छोड़कर सब कुछ वापस पहले जैसा ही था – उसका दिमाग, उसकी याद्दाश्त भी वैसी ही थी जैसी इस कहानी की शुरुआत के वक्त थी। इसीलिए यहां ऊपर जो कुछ बताया गया है उसके बारे में वह कुछ नहीं जानता, आज तक भी उसे कुछ नहीं पता, और दूसरी चीज़ों के साथ-साथ वह चमत्कारों में भी विश्वास नहीं करता।

उसने कहा, "मैं आपको बताता हूं कि चमत्कार होना असंभव है। आप लोग चाहे कुछ भी सोचें मैं इस बात को अन्त तक सिद्ध करने को तैयार हूं।"

बीमिश ने कहा, "तुम ऐसा सोचते हो, तो अगर सिद्ध कर सकते हो तो करो।"

"बीमिश इधर देखो," फरनैन्डिस बोला, "हम लोगों को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि चमत्कार क्या है, यह प्रकृति के विपरीत की गई कोई चीज़ है जिसे इच्छा-शक्ति..."

एच. जी वेल्सः (जन्म 21 सितम्बर 1866 – मृत्यु 13 अगस्त 1946) उपन्यासकार, पत्रकार, समाजशास्त्री और इतिहासकार। उन्हें सबसे अधिक प्रसिद्धि विज्ञान गल्प लिखने को लेकर मिली। उनकी कुछ प्रमुख किताबें हैं – 'द टाइम मशीन', 'द इनविज़िबल मैन', 'द वार ऑफ द वर्ल्ड', 'द आउटलाइन ऑफ द हिस्ट्री'।

ज़रा सिर तो खुजलाइए

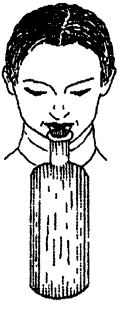

खाली शीशी या पेन के ढक्कन में मुंह से फूंक मारकर तो सीटी सभी ने बजाई होगी। इस बार की हमारी गुत्थी इसी विषय से जुड़ी है।

बस एक खाली शीशी को अपने पास रखिए। उसमें फूंक मारकर सीटी बजाइए और ध्वनि की पिच (Pitch) पर गौर कीजिए। अब इस शीशी में थोड़ा-सा पानी भरिए। फूंक मारकर सीटी बजाइए और निकलने वाली ध्वनि की पिच पर गौर कीजिए। अब थोड़ा और पानी भरिए और फिर से ध्वनि की पिच पर गौर कीजिए। बस आपको बताना है कि शीशी में पानी की ऊंचाई बढ़ने के साथ-साथ क्या पिच भी बढ़ती जाती है? और अगर ऐसा होता है तो क्यों?

सवालीराम. . .

सवालः हमारी नाक में विभिन्न प्रकार की गंध का अहसास किस प्रकार होता है?

प्रमोद यादव, बनर्जी कॉलोनी,
भगत सिंह वार्ड, पचमढ़ी रोड,
पिपरिया, मध्य प्रदेश

हो सकता है कि कभी आपने भी इन सवालों के बारे में सोचा हो। गुत्थी सुलझाने में हमारी मदद कीजिए। इन सवालों के किसी भी पहलू के बारे में आपके पास कोई जानकारी हो तो हमें लिख भेजिए। इस पते पर – संदर्भ, द्वारा, एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद 461 001

वप 3 : अक 13 स 18

शैक्षिक संदर्भ

अंक 13

आपने लिखा.	2	शुक्राणु और अंडाणु का निर्माण.	.56
बच्चों से दोस्ताना रिश्ते.	7	बीजों में श्वसन.	61
जब पानी उबले.	13	तो धरती भी गोल निकली. . . .	63
एक समयहीन माहौल में समय.	24	ज़रा सिर तो खुजलाइए.	73
कौन भाषा, कौन बोली.	37	अनारको का दूसरा सपना. . . .	77
क्यों छोड़ा स्कूल ओटा ने.	44	पर्यावरण शिक्षा और.	85
सहबंधन यानी इलेक्ट्रॉन.	47	दिमाग भी बौराया.	96

अंक : 14

आपने लिखा.	2	एक जीवनी की तलाश. . . .	42
बुन्सन बर्नर, हवा में ऑक्सीजन.	7	तीन स्विचों से जला बल्ब. .	54
धरती का घूमना वाकई चक्कर.	11	कैसे बनेगा सहबंध.	61
मुझे क्या मालूम हुआ.	19	बच्चों की भाषा.	68
समुद्र का फैलना और महाद्वीप.	25	एक शाम जादूगर के साथ. .	76
मवालीराम.	40	संदर्भ इंडेक्स अंक 7 से 12.	90

अंक : 15

आपने लिखा.	2	ज़रा सिर तो .	55
एक प्रयोग से उपजी बहस . . .	6	खोज: प्लेग के जीवाणु और.	57
शिकारी से बचने की कोशिश में.	13	चुंबक, मैं और वह शिक्षक.	71
क्रोमेटोग्राफी, यानी मिश्रण. . . .	19	धूमकेतु, एक बार फिर.	74
मवालीराम.	29	सिपाही नेमीशरण का जनाज़ा.	77
भूकंप, ज्वालामुखी और प्लेट. . .	31	जहां चाह वहां राह.	86
बच्चों के चित्र क्या बताते है. . .	46	चींटी का शिकार.	96

अंक : 16

आपने लिखा.....	2	आवर्त सारिणी का इस्तेमाल	45
शीर्षक, विवाद और विज्ञान.....	4	तुमने यह क्या बनाया.....	54
प्रजनन शिक्षा के मायने.....	13	ज़रा सिर तो खुजलाइए.....	60
अगर हाथी केंचुआ होता.....	17	सवालीराम	61
सांस लेने के तरीके	21	कौन ऐसी महिला है...?.....	69
दिमाग के बीच पड़ी एक ग्रंथी.....	30	छतन और मास्टर साहब.....	86
धरती के चुंबक का असर.....	35	ललचाती गंध और	92

अंक : 17

आपने लिखा.....	3	पेड़-पौधों में श्वसन.....	51
गलतियां, जुलाहा और.....	9	प्लाज़्मा.....	59
कम्प्यूटर कैसे खेलता है शतरंज.....	13	तब.....	65
रोजगार.....	25	ज़रा सिर तो खुजलाइए.....	74
सवालीराम.....	32	गलीलियो गलीली.....	76
ऊर्ध्वपातन.....	37	नारंगी.....	87
सिरफिरे समुद्री केकड़े में.....	42	जुगनू की प्रणयलीला.....	96

अंक : 18

आपने लिखा.....	2	चिंपैंज़ी.....	56
अंडे, टैडपोल और बना मेंढक.....	7	रोशनी और मुर्गी का अंडा.....	57
स्कूल के सवाल ज़िंदगी के.....	15	रोज़गार-2.....	64
नींद, सुलझी अनसुलझी पहेली.....	29	क्यों पढ़ाते थे वैसे.....	73
ज़रा सिर तो खुजलाइए.....	40	वह आदमी जो चमत्कार.....	83
फुटबॉल कार्बन.....	43	मछली...अरे नहीं.....	96

इंडेक्स (INDEX)

इस देखने का तरीका : छह अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थान पर आएंगे। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का नंबर है जिसमें वह लेख है, उसके बाद इस अंक का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है।

भौतिकी (Physics)

जब पानी उबले	अजय शर्मा	13.13
तो धरती भी गोल निकली	दीपक वर्मा	13.63
पंखे की हवा कितनी गर्म कितनी ठंडी	(ज़रा सिर तो खुजलाइए)	13.73
बुन्सन बर्नर, हवा में ऑक्सीजन और. . .	रवि दिवाकरन	14.7
धरती का घूमना वाकई चक्कर में डाले	अनीता रामपाल	14.11
तीन स्विच से जला बल्ब	(ज़रा सिर तो खुजलाइए)	14.54
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	15.55
चुंबक, मैं और वह शिक्षक	वी. एस. डबीर	15.71
धूमकेतु एक बार फिर	–	15.74
धरती के चुंबक का असर	अजय शर्मा	16.35
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	16.60
बरसात, पानी की गोल बूंद और इन्द्रधनुष	(सवालीराम)	16.61
प्लाज़्मा	पूर्वी झवेरी	17.59
फटते कागज़ से निकलती आवाज़	(ज़रा सिर तो खुजलाइए)	17.74
गलीलियो गलीली	जे. डी. बर्नाल	17.76

रसायन शास्त्र (Chemistry)

सहबंधन यानि इलेक्ट्रॉन	सुशील जोशी	13.47
बुन्सन बर्नर, हवा में ऑक्सीजन और . . .	रवि दिवाकरन	14.7
कैसे बनेगा सहबंध	सुशील जोशी	14.61
क्रोमेटोग्राफी, यानी मिश्रण से अलग होते.	सुशील जोशी	15.19
वसा प्रोटीन की जिगरी दोस्ती	(सवालीराम)	15.29

आवर्त सारणी का इस्तेमाल	सुशील जोशी	16.45
ऊर्ध्वपातन, पदार्थ का एक मज़ेदार गुण	सुशील जोशी	17.37
फुटबॉल कार्बन	स्टीवन मिलर	18.43

प्राणी शास्त्र (Zoology)

शुक्राणु और अंडाणु का निर्माण	विपुल कीर्ति	13.56
दिमाग भी बौराया	–	13.96
रक्त के बहाव में रुकावट	(सवालीराम)	14.40
शिकारी से बचने की कोशिश में	किशोर पंवार	15.12
खोज : प्लेग के जीवाणु और फैलने के . .	लुडविक ग्रॉस	15.57
चींटी का शिकार	–	15.96
प्रजनन शिक्षा के मायने	जे. बी. एस. हाल्डेन	16.13
अगर हाथी केंचुआ होता	दीपक वर्मा	16.17
सांस लेने के तरीके	भरत पूरे	16.21
दिमाग के बीच पड़ी एक ग्रंथी	–	16.30
धरती के चुम्बक का असर	अजय शर्मा	16.35
ललचाती गंध और केकड़ा मकड़ी	किशोर पंवार	16.92
सुरक्षा तंत्र सक्रिय है	(सवालीराम)	17.32
सिरफिरे समुद्री केकड़ों में ज्वारीय लय	एम. के. चंद्रशेखरन	17.42
जुगनू की प्रणयलीला	–	17.96
अंडे, टैडपोल और बना मेंढक	गीता दुबे	18.7
रोशनी और मुर्गी का अंडा	स्निग्धा मित्रा	18.57
मछली... अरे नहीं, नहीं कीट	–	18.96

वनस्पति शास्त्र (Botany)

बीजों में श्वसन	रुचि चौरे	13.61
ललचाती गंध और केकड़ा मकड़ी	किशोर पंवार	16.92
पेड़-पौधों में श्वसन	दीपक वर्मा	17.51

मनोविज्ञान/तंत्रिका विज्ञान (Psychology/ Neuro Sciences)

नींद, सुलझी अनसुलझी पहेली	विवेक प्रकाश	18.29

जैविक लय (Biological Rhythm)

एक समयहीन माहौल में समय	एल. गीता	13.24
सिरफिरे समुद्री केकड़ों में जैविक लय	एम. के. चंद्रशेखरन	17.42

प्राणी व्यवहार (Animal Behaviour)

शिकारी से बचने की कोशिश में	किशोर पंवार	15.12
ललचाती गंध और केकड़ा मकड़ी	किशोर पंवार	16.92
जुगनू की प्रणयलीला	–	17.96

सूक्ष्म जैविकी (Micro Biology)

वसा प्रोटीन की जिगरी दोस्ती	(सवालीराम)	15.29
खोजः प्लेग के जीवाणु और उसके फैलने के...	लुडविक ग्रॉस	15.57

गणित/सांख्यकी (Maths)

कम्प्यूटर कैसे खेलता है शतरंज	आमोद कारखानिस	17.13
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	18.40

इतिहास (History)

एक जीवनी की तलाश – काशी का जुलाहा	सी. एन. सुब्रह्मण्यम	14.42
कौन ऐसी महिला है	सी. एन. सुब्रह्मण्यम	16.69
गलीलियो गलीली	जे. डी. बर्नाल	17.76

भूगोल/भूविज्ञान (Geography/Geology)

तो धरती भी गोल निकली	दीपक वर्मा	13.63
धरती का घूमना वाकई चक्कर में डाले	अनिता रामपाल	14.11
नया बनता समुद्र और खिसकते महाद्वीप	आमोद कारखानिस	14.25
भूकंप, ज्वालामुखी और प्लेट टेक्टोनिक्स	आमोद कारखानिस	15.31

अर्थशास्त्र (Economics)

रोज़गार	यों द्रेज़	17.25
रोज़गार-2	यों द्रेज़	18.64

भाषा

कौन भाषा कौन बोली	रमाकांत अग्निहोत्री	13.37
बच्चों की भाषा	रश्मि पालीवाल	14.68
शीर्षक, विवाद और विज्ञान	साधना सक्सेना	16.04
भाषा, बोली और बच्चों का सीखना	रमाकान्त अग्निहोत्री	16.7

विज्ञान और शिक्षा

बुन्सन बर्नर, हवा में ऑक्सीजन और...	रवि दिवाकरन	14.07
चुंबक, मैं और वह शिक्षक	वी. एस. डबीर	15.71
प्रजनन शिक्षा के मायने	जे. बी. एस. हाल्डेन	16.13
अंडे, टैडपोल और बना मेंढ़क	गीता दुबे	18.7
स्कूल के सवाल ज़िन्दगी के सवालों से फर्क. . .	प्रोफेसर यशपाल	18.15

कुछ तरीके पढ़ाने के

मुझे क्या मालूम हुआ	लक्ष्मीनारायण चौधरी	14.19
बच्चों की भाषा	रश्मि पालीवाल	14.68
बच्चों के चित्र क्या बताते हैं	कैरन हैडॉक	15.46
तुमने यह क्या बनाया	कमलेश चंद्र जोशी	16.54
अंडे, टैडपोल और बना मेंढ़क	गीता दुबे	17.7
क्यों पढ़ाते थे वैसे	माधव केलकर	18.73

बच्चों के साथ अनुभव

बच्चों से दोस्ताना रिश्ते	कमलेश चंद्र जोशी	13.07
अब इन बहानों का क्या करें	विष्णुकांत	14.74
मुझे क्या मालूम हुआ	लक्ष्मीकांत चौधरी	14.19
बच्चों के चित्र क्या बताते हैं	कैरन हैडॉक	15.46
तुमने यह क्या बनाया	कमलेश चंद्र जोशी	16.54

प्रयोग, गतिविधि एवं मॉडल

बीजों में श्वसन	रुचि चौरे	13.61
तीन स्विच से जला बल्ब	(ज़रा सिर तो खुजलाइए)	14.54

क्रोमेटोग्राफी, यानी मिश्रण से अलग. . . सुशील जोशी
ज़रा सिर तो खुजलाइए

पाठ्यक्रम की समीक्षा, सर्वे एवं रिपोर्ट

पर्यावरण, शिक्षा और आजीविका दुनु रॉय 13.85
बुन्सन बर्नर, हवा में ऑक्सीजन. . . रवि दिवाकरन 14.7
एक प्रयोग से उपजी बहस ललित पांडे 15.06

कहानी

अनारको का दूसरा दिन सत्यु
एक शाम जादूगर के साथ जे. बी. एस. हाल्डेन
सिपाही नेमीशरण का जनाज़ा नॉर्मन डेनियल
नारंगी का छिलका समद बहरंगी
वह आदमी जो चमत्कार कर सकता था एच. जी. वेल्स

पुस्तक समीक्षा

पर्यावरण, शिक्षा और आजीविका दुनु रॉय
एक प्रयोग से उपजी बहस ललित पांडे
जहां चाह वहां राह जॉन होल्ट

जीवनी, संस्मरण/प्रसंग

एक जीवनी की तलाश सी. एन. सुब्रह्मण्यम 14.42
खोज: प्लेग के जीवाणु और फैलने के . . लुडविक ग्रॉस 15.57
छतन और मास्टर साहब घनश्याम तिवारी 16.86
गलतियां, जुलाहा और धागे की गांठ सी. एन. सुब्रह्मण्यम 17.09
तब... स्कूल, शिक्षक और मैं कैलाश बृजवासी 17.65
क्यों पढ़ाते थे वैसे माधव केलकर 18.73

अन्य

इंडेक्स 14.90
उलटते पलटते ध्रुव 17.73
चिम्पैंज़ी 18.56

तौबा ये मतवाली चाल

लिजलिजा केंचुआ, हाथ लगाओ तो लगता है कि फिसल जाएगा। शायद ही कोई हो जो उसकी चाल पर फिदा न हुआ हो। पहले शरीर के एक हिस्से को सिकोड़ेगा फिर इसे खींचकर लंबा कर देगा और इसी के साथ बढ़ गया आगे वह कुछ सेंटीमीटर।

लेकिन क्या संभव है बिना किसी जगह पकड़ बनाए, यूं ही अपने आप को जब चाहे सिकोड़ लेना और जब चाहे फैला लेना?

अगले पृष्ठ पर फैले चित्रों को ज़रा गौर से देखिए। ऊपर वाले चित्र में केंचुए के शरीर में आंकड़े जैसी (हुकनुमा) रचनाएं दिखाई दे रही हैं। जिन्हें 'सीटी (Setae)' कहते हैं। इन्हें कड़े बाल की तरह मान सकते हैं। हां, इन्हें नंगी आंखों से केंचुए के शरीर पर देखना संभव नहीं है। इस चित्र को इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से लिया गया है।

यह तो मालूम ही होगा कि केंचुए का शरीर कई हिस्सों में बंटा होता है। यह हुकनुमा रचनाएं हर हिस्से में होती हैं। साथ ही प्रत्येक हिस्से में लंबी और गोलाकार मांसपेशियां होती हैं। इस तरह केंचुए के लिए संभव है कि एक ही समय पर शरीर के एक हिस्से को सिकोड़ पाए और दूसरे को खींच पाए।

जिन हिस्सों को वह सिकोड़ता है उन हिस्सों पर मौजूद हुक सतह पर पकड़ बना लेते हैं। और जिन हिस्सों को वह खींचता है वहां के हुक ज़मीन से छूट जाते हैं। इस तरह एक जगह आधार बना कर आगे बढ़ता जाता है हमारा केंचुआ। और हां जनाब, यह दोनों तरह से चल सकता है – आगे से भी और पीछे से भी।

केचुए के आगे बढ़ने की दिशा

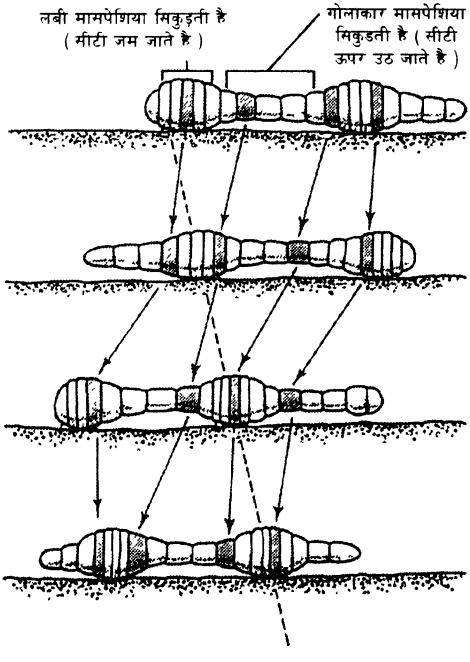

मांसपेशी और सीटी. ऊपर केंचुए के शरीर का इलेक्ट्रॉन माइक्रोग्राफ जिसमे कडे बाल जैसी रचनाएं दिख रही है। यह सीटी हैं। सीटी एक तरह से उसे जमीन मे जमने मे मदद करते है।

नीचे का चित्र केचुए के आगे बढ़ने की प्रक्रिया का है। कुछ हिस्मो को पहचान के लिए रंगा गया है और तीर के निशान लगाए गए हैं ताकि गति समझने मे आसानी हो।

केंचुए के शरीर में मौजूद लंबी और गोलाकार मांसपेशियां सिकुडने पर विपरीत स्थितियां पैदा करती हैं। जब लंबी मांसपेशियां सिकुडती हैं तो शरीर सिकुडता है और जब गोलाकार मांसपेशियां सिकुडती हैं तो शरी फैलता है।

'27746